हिन्दी-पुस्तक-माला, संख्या ८

प्रबन्ध-पूर्णिमा

सम्पादक-

श्रीयुत बा० अम्बिकाप्रसाद गुप्त
सम्पादक 'इन्दु'

प्रकाशक—

हिन्दी ग्रन्थभण्डार कार्य्यालय
बनारस सिटी।

वि० सम्वत् १९७७

प्रथमबार] [मूल्य १)

प्रकाशक—

हिन्दी ग्रन्थभण्डार कार्य्यालय

बनारस सिटी।

मुद्रक

एम० पी० गुप्त

चन्द्रप्रभा प्रेस—

बनारस सिटी।

उपहार

} श्री

परिचय ।

इस 'प्रबन्ध-पूर्णिमा' के परिचय के सम्बन्ध में हमें यहाँ कुछ विशेष नहीं लिखना है। क्योंकि इसके लगभग सब प्रबन्ध उस लोकप्रिय 'इन्दु' से उद्धृत मात्र हैं, जोकि आज से ६, ७ वर्ष पहले हिन्दी संसार की यथेष्ट सेवा कर चुका है।

इधर हमारे कई प्रेमियों का अनुरोध हुआ कि उसके उपयोगी अंशों का पुस्तक रूप में भिन्न २ संस्करण प्रकाशित करा दिये जायँ। उसी अनुरोध का फल है जो १५ 'प्रबन्धों' की यह 'पूर्णिमा' आज इस रूप में अपने पाठकों के कर कमल में उपस्थित है।

इसके सम्पादन में यदि किसी बात का ध्यान रक्खा गया है, तो केवल इतना ही कि यह भारत के भावी सन्तानों को योग्य नागरिक बनाने में सहाय हो सके।

अम्बिकाप्रसाद गुप्त ।

—:*:—

हिन्दी-पुस्तक-माला।

—:*:—

हिन्दी साहित्य के अच्छे २ ग्रन्थरत्नों से सुशोभित करने के लिये ही इस माला की सृष्टि की गई है। इसके लेखक हिन्दी के नामी २ विद्वान हैं। छपाई सफाई पर विशेष ध्यान रक्खा जाता है। स्थायी ग्राहकों को समस्त पुस्तकें पौनी कीमत पर दी जाती हैं। इसके लिये कुछ पेशगी देने का नियम नहीं है। केवल एक कार्ड भेज स्थायी ग्राहकों में नाम लिखा लेना होता है। पुस्तक प्रकाशित होने के एक सप्ताह पहले ग्राहकों को जवाबी कार्ड से सूचना दे दी जाती है। पश्चात् स्वीकृति के अनुसार पुस्तक वी० पी० से भेजी जाती है।

अबतक—

चित्राधार १।।) झरना ।-) जंगलीरानी =) लता =) हृदयदान =) लिली =) बलिदान =) ये सात पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

आठवीं पुस्तक यह

यह

प्रबन्ध-पूर्णिमा

है।

नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं, और बारहवीं पुस्तक—

चोट (सचित्र)

चन्द्रलेखा (प्राचीन राजनीति की झलक) **नाटक**

हिन्दी साहित्य

दलदल

शीघ्रही प्रकाशित होंगी। मूल्य और उसके यथार्थ परिचय से आप यथासमय अवगत किये जायँगे।

पता—

मैनेजर—" हिन्दी ग्रन्थ-भण्डार कार्यालय "

नई सड़क, बनारस सिटी।

प्रबन्ध-सूची।

—:*:—

—:*:—

लोकमान्य तिलक।

भारत

को

नवजीवन प्रदान करने वाले

स्वर्गीय

लोकमान्य पं० बालगङ्गाधर तिलक

महाराज की

पवित्र स्मृति

में

—*—

आदेश

—:※:—

राष्ट्रके प्रति अपना कर्तव्य जो इस समय हमारे साम-ने है, वह इतना महान् और विस्तृत तथा ऐसा अत्या-वश्यक है, कि मेरी अपेक्षा कहीं अधिक उत्साह और साहस से तुम सब को एक होकर उसका पालन करना चाहिये। यह ऐसा कार्य है जिसे हम आगे के लिये नहीं उठा रख सकते। मातृभूमि हममें से प्रत्येक को पुकार पुकार कर कह रही है, कि उठो कमर कसो और काम में लग जाओ। मेरे विचार से उसके पुत्र उसकी यह पुकार कदापि अनसुनी नहीं कर सकते। मेरा कर्तव्य है, कि मैं आप लोगों का ध्यान माता की इस पुकार की ओर आकर्षित करूँ और आप से प्रार्थना करूँ, कि माता की इस पुकार पर आपस का समस्त मत भेद भूल जाओ और राष्ट्रीय आदर्शों को स्वयं मूर्ति बन जाने का उद्योग करो। माता के इस पवित्र कार्य में न प्रतिद्वन्द्विता है, न द्वेष है और न भय है। ईश्वर हमें हमारे उद्योगों का फल प्रदान करेगा। और उस फल को यदि हम न भी प्राप्त कर सकें तो यह निश्चय ही है कि हमारी आने वाली सन्तानें इस फल को अवश्य ही प्राप्त कर सकेंगी।

लोकमान्य तिलक।

—:※:—

प्रबन्ध-पूर्णिमा।

हिम्मत करो।

—:*:—

आप उदास क्यों हैं ? चेहरा क्यों कुम्हलाया हुआ है ? उठो हिम्मत करो। यह जीवन शोक करने के लिये नहीं है। यह जिन्दगी काम करने के वास्ते है। अपने रास्ते में पड़ी हुई रुकावटों को देख धबड़ा मत जाओ। यह रुकावटें आप की हित-चिन्तक हैं। यह जीवन को उन्नत करने के साधन हैं।

इस संसार में प्रत्येक आत्मा का कोई न कोई उद्देश्य है। सर्वज्ञ कर्त्ता ने कोई वस्तु निरर्थक उत्पन्न नहीं की। इस महान यन्त्र का प्रत्येक पुरजा किसी न किसी अभिप्राय की सिद्धि के लिये है। सोचो वह अभिप्राय कौन सा है।

यदि आपने उस अभिप्राय को जान लिया है, और उसकी सिद्धि के हेतु आपको बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पडता है, तो यह भी विश्वास करो कि उन कठिनाइयों को दूर करने के साधन भी वहीं मौजूद हैं। उन साधनोंको जानना—उनका ठीक ठीक उपयोग करना उनके अनुसार कार्य-सिद्धि करना यही सच्चा जीवन है।

क्या आपने ऐसा किया है ?

यदि ऐसा किया होता तो कभी भी यह उदासीनता न आती। उदासीनता का आजाना ही इस बात का प्रमाण है कि आपने अपने जीवनोद्देश्य को नहीं समझा। आप हिम्मत

हारे बैठे हैं। संसार आपको दुःखमय बोध होता है। सब भाई, बंधु, मित्र, यार आपको अपने शत्रु जान पड़ते हैं। आप जिधर दृष्टि उठाते है कष्ट ही कष्ट दीख पडता है। निराशा आपको आत्मघात करनेके लिये कहती है।

क्या इससे आपके दु.खोंका अन्त हो जावेगा ?

कभी नहीं। हरगिज नहीं। आप एक जगह से भाग कर दूसरी जगह जाया चाहते है। लेकिन जहाँ आप जायेंगे, अपने संकल्प विकल्पोंका चिट्ठा साथ ले जायेंगे। वह आपको नहीं छोडेगा। आप जहाँ जायेंगे, वहीं यह भूत आपके साथ जावेगा। यदि स्वर्ग मे आप पहुँच जावें, तो वहाँ भी नरक दिखाई देगा। आप इस भूत को पीछे नहीं छोड़ सकते।

इस भूत को यहीं रहकर भगाना ठीक है इस निराशा के जाल को यहां रहकर काट सकते है। उदासीनता छोड़ ऊपर दृष्टि डालिये। अपनी आत्मा को इन निर्बलताओं से विमुक्त कीजिये। ईश्वर ने यह जीवन काम करने के लिये दिया है। इस जीवनका कोई खास उद्देश्य है। उस उद्देश्य को जानिये। अपनी शक्तियों की पडताल कीजिये और उनका ठीक उपयोग करना सीखिये।

स्मरण रखिये, रुकावटें और कठिनाइयाँ आपकी हित-चिन्तक है। वे आपकी शक्तियों का ठीक उपयोग सिखाने के लिये हैं। वे उद्देश्य के कण्टक हटाने के लिये है। वे आपके जीवन को आनन्दमय बनाने के लिये है। जिनके रास्ते में रुकावटें नहीं पडी वे जीवन का आनन्द ही नहीं जानते। उनको जिन्दगीका स्वाद ही नहीं आया। जीवन का रस उन्होंने चखा है जिनके रास्ते में बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ पड़ी हैं। वे ही

महान आत्मा कहलाये हैं। उन्हीं के जीवन जीवन प्रदान कर सकते हैं।

उठो! उदासीनता त्यागो। प्रभुकी ओर देखो। वे जीवन का पुञ्ज हैं। उन्होंने आपको इस संसार में निरर्थक नहीं भेजा। उन्होंने जो श्रम आपके ऊपर किया है उसको सार्थक करना आपका काम है। यह ससार तभीतक दु.खमय दीखता है जब तक हम इसमें अपना जीवन होम नही करते। बलिदान हुए बीज पर ही वृक्षका उद्भव होता है। फल फूल उसके जीवन की सार्थकता सिद्ध करते है।

सदा प्रसन्न रहो। मुसीबतों का खिले चेहरेसे सामना करो। "आत्मा सबसे बलवान है" इस सच्चाई पर दृढ़ विश्वास रक्खो। यह विश्वास 'ईश्वरीय विश्वास' है। इस विश्वास द्वारा आप सब कठिनाइयों पर विजय पा सकते हैं। कोई कायरता आपके सामने ठहर नहीं सकती। इसी से आप के बल की वृद्धि होगी। यही आप की आन्तरिक शक्तियों का विकास करेगा।

निर्भय होकर अपने जीवनोद्देश्य पर डट जाओ। किसी से भय मत करो, क्योंकि भय आपके जीवनरूपी लकड़ी को घुन लगाता है और अन्दर ही अन्दर से खा डालता है। भय को निकट मत आने दो। यह बड़ा दुष्ट है। इसके वश में पड़ा हुआ मनुष्य निकम्मा हो जाता है। यह मनुष्य को नीच बना देता है। उसके मनुष्यत्व को नष्ट कर डालता है। जो आपको भय दिखाता है समझो वह बडा स्वार्थी है। उसका अपना आत्मा निर्बलताओं से भरा हुआ है। उससे कभी मत डरो।

यह संसार आनन्द से पूर्ण है। उस आनन्द से वही आत्मायें लाभ उठा सकती हैं जिन्होंने जीवनोद्देश्य को समझ उनकी सिद्धि पर कमर बाँधी है। भीरु कायर मनुष्य अपने शत्रु आप हैं। वे कठिनाइयों से भागना चाहते हैं पर भाग नहीं सकते। वे रोते हैं, चिल्लाते हैं इससे उनका दुःख और भी बढ़ता है। उनका जीवन कण्टकमय हो जाता है। वे जहाँ जाते हैं अपने दु.ख की गठरी साथ ले जाते हैं।

इसी लिये दु.खों,कठिनाइयों का मर्द बनकर सामना करो।

इससे हरगिज मत डरो। ईश्वर पर सच्चा विश्वास रख अपने कर्तव्य पर आरूढ़ हो जाओ, और अपने दूसरे निर्बल भाइयों से प्रेम पूर्वक कहोः-

"हिम्मत करो! हिम्मत करो।"

सत्यदेव।

—:*:—

कष्ट की अग्नि द्वारा शुद्ध हुए विना कभी कोई देश ऊपर नहीं उठा। माता इस लिए कष्ट उठाती है कि उसका बालक जीवित रह सके। गेहूँ उगने के लिये शर्त यह है कि बीज का अस्तित्व नष्ट हो जावे। मृत्यु ही से जीवन उत्पन्न होता है।

—महात्मा गान्धी।

—:*:—

चरित्रबल और विवाह।

देश के सभी हितैषियों को इस बात से अवश्य दुःख है कि इस समय भारतवर्ष में व्यक्तिगत और राष्ट्रीय दोनों प्रकार का चरित्रबल इतना कम है कि हम लोग अपनी निजी उन्नति अथवा जातीय उद्धार के लिये सफलता की आशा से कार्य नहीं कर सकते। इस सम्बन्ध में चरित्र शब्द से मैं उन गुणों का निर्देश नहीं करता जिनसे सदाचार, विनय, सत्यता, दानशीलता, अहिंसा आदि का बोध हो। इस प्रकार के गुण तो एक तरह से बहुत हैं। चरित्र से हमारा अर्थ यह भी नहीं है कि स्त्री पुरुष के कामसम्बन्ध में पवित्रता हो। यह भी अपने देश में अन्य देशों से अधिक नहीं तो कम भी नहीं है। चरित्र बल से हमारा अर्थ यह है कि हम लोगों को अपने कर्म में तत्परता और दृढ़ता हो, हम लोगों में वह शक्ति हो जिसके कारण हम अपने २ कार्यों को किसी सीमा तक पहुँचा सकें। चरित्र से हमारा अर्थ उस आत्मबल से है जिसकी सहायता से हम अपने २ कार्य विशेष में तन, मन, धन से लगे रहते हैं और इसका विचार नहीं करते कि और लोग क्या करते हैं?

प्रायः यह देखने में आता है हम लोग अपना कार्य थोड़ा भी विरोध होने पर छोड़ देते हैं। यदि किसी ने कुछ भी हमारी हँसी की या अन्य बाधा के उपस्थित होने पर निरुत्साही हुए, तो हम लोग अपना मन उस कार्य से हटा लेते हैं। यदि किसी अंश में भी विफल हुए तो हम पीछे हट आते हैं। इन्हीं सब कारणों से हमारी सार्वजनिक अथवा व्यक्ति-

गत संस्थायें नहीं पनपतीं। एक तो कार्यारम्भ करने ही से घबड़ाते हैं और यदि आरंभ भी किया तो साहस के साथ उसे नहीं निवाहते। यह कह देना पर्याप्त नहीं है कि हाँ यह सत्य है, यह सब लोग मानते हैं। जो हमारे समाज की दशा है वह इस बात की वास्तविकता का प्रमाण है। अब हमारे सामने जो प्रश्न है वह यह है कि हम लोग अपने चरित्र बल को कैसे बढावें, और अपने आत्मा में उस शक्ति का सञ्चार कैसे करें जिससे कि हम लोग अपने कार्य में दत्तचित्त रह सकें।

इन सब विषयों पर विचार करने से मुझ को तो यही प्रतीत होता है कि यह सारा दोष हमारे गार्हस्थ्य-जीवन का है। गृहस्थी ही देश के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक जोवन का एकमात्र आधार है। और यदि किसी प्रकार के सुधार की आकांक्षा है तो सब से प्रथम इसी के सुधार का आयोजन होना चाहिये। गृहस्थी विवाह संस्कार का फल स्वरूप है। इस लेख में मैं विवाह के विषय पर विशेष कर लिखना चाहता हूं। क्योंकि हम लोगों के चरित्रबल को ऊंचा करने के वास्ते यह आवश्यक है कि विवाह की प्रचलित प्रथा का पूर्णतया सुधार हो। ऐसा न होने से हम लोगों की भलाई और हमारे और हमारे व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक उद्योगों की सफलता कदापि नहीं हो सकती।

भारतीय विवाह संस्कार के तीन प्रधान अङ्ग हैं। (१) वर कन्या को निश्चय करने का अधिकार स्वय उनहीं के ऊपर नहीं है परन्तु उनके माता पिता और अन्य गुरुजनों पर है। (२) विवाह बहुत छोटी उमर में होता है। (३) विवाह के बाद वर कन्या अपनी अलग गृहस्थी न जमा कर अपने गुरुजन के

ही संरक्षण में रहते हैं। ये तीनों रीतियाँ एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। मातापिता को निश्चय करने का अधिकार तब ही तक हो सकता है जब तक बाल विवाह की प्रथा प्रचलित है। साधारण प्रकार से बडी उमर में स्त्री पुरुष दूसरों को अपने लिये पति पत्नी चुनने न देंगे। और जब तक बालविवाह है अर्थात् जब तक विवाह ऐसी उमर में होता है जब पति स्वयं अपनी जीविका उपार्जन नही कर सकता और पत्नी अपनी तथा अपनी गृहस्थी की फ़िक्र नहीं कर सकती, तब तक वे अवश्य ही अपने गुरुजनों के आश्रम में आवेंगे, वे अपना घर अलग नही बना सकते। अत या तो तीनों रीतियाँ बनी रहें या साथ ही चली जांय। कोई बीच का मार्ग दिखाई नहीं देता। अगर कोई बीच का मार्ग निकाला जाय तो कठिनाइयाँ और बढती जायगी और उनका घटना बहुत ही कठिन है। हमारे विचार में तीनों ही रीतियों का जाना अच्छा है। वर कन्या एक दूसरे को स्वयं चुनें; उनका विवाह ऐसी उमर में हो जब अपनी फिक्र स्वय कर सकें और विवाह के परे वे अपनी गृहस्थी अलग जमावें। मैं खूब जानता हू कि इसमें बहुत सी बुराइयाँ पैदा होंगी। ऐसे मार्ग में जा २ भय है उनको भी मैं समझता हू। साथ ही साथ मैं यह भी जानता हू कि इस नये मार्ग के अवलबन से हमारा गार्हस्थ्य जीवन आज से अधिक सुखी नही होगा। यह सब समझते हुए भी मैं परिवर्त्तन के लिये केवल एक निमित्त से जोर दे रहा हू।

मेरा यह निश्चित मत है कि इस परिवर्त्तन से जाति का चरित्रबल बढ़ेगा, जाति अधिक स्वावलम्बी होगी और जीवन के कार्य कर सकेगी, दत्तचित्त होकर बडे २ कार्यों में लगेगी, स्वतन्त्र और साहसी होगी। विवाह सस्कार का इस प्रकार

से परिवर्त्तन होने पर हम लोगों को कई ऐसे गुण प्राप्त होंगे जिनकी हमें कमी है। यद्यपि कई दोष भी आवेंगे, तथापि इससे व्यक्तिगत और जातीय भलाई होगी जो दोषों का भली प्रकार परिहार कर सकेगी।

किपलिंग ने एक अङ्गरेज सेनापति की कथा कही है जिस ने इस बात को स्वीकार किया है कि विवाह के पहले जितने साहस के साथ और जान छोड़कर मैं लड सकता था। उतना विवाह हो जाने पर नहीं लड़ सकता। बालविवाह का विरोध इस घटना के उल्लेख करने से पूर्णतया हो जाता है। यदि एक सेनापति जो नौसिखिया नहीं है, जो कितने ही बार युद्ध में हो आया है यदि वह सहसा विवाह बन्धन के बाद अपनी हृदय की दुर्बलता को देखने लगता है, तो क्या आश्चर्य है कि ऐसे नवयुवकों पर जो पहले कभी भय का सामना नहीं कर चुके हैं, जो कभी पहले इस अवस्था में पड़े ही नहीं जहाँ साहस अथवा धैर्य की आवश्यकता हो, उनके आत्मा और हृदय को विवाह कितना शिथिल कर देगा। जीवन क्षेत्र में पदार्पण करते ही तो वे विवाह के कारण बंदी तुल्य हो गए हैं और पहले ही भय के सामने पीछे हट जाते हैं। साहस की जो कुछ शक्ति उन में थी वह नष्ट हो चुकी। उनकी आँख के सामने सदा ही पत्नी और सम्भवतः संतति का चित्र अंकित रहता है। और ये सदा उसको यही कहते प्रतीत होते हैं कि अपने शरीर की रक्षा करो, संकट से बचो। यह प्रथम कारण है कि हमको महत्वाकांक्षाएँ नहीं होतीं। कोई बड़े बड़े लक्ष्य तथा उद्देश्य हम अपने सामने नहीं रख सकते और हमें सदा थोडे ही से संतुष्ट रहना पडता है, क्योंकि कम से कम उस थोड़े के सहारे हम येन-केन-प्रकारेण अपनी पत्नी

संतति और अन्यान्य आश्रित लोगोंका भरण पोषण तो कर सकते हैं। जिस प्रकार का सामाजिक जीवन हमारा है उसमें कितने ही नजदीकी और दूर के रिश्तेदार लोग बिना कारण ही गृहस्थों के आश्रित बन बैठते हैं और उसके द्वारा अपने को भरण पोषण का अधिकारी समझते हैं, और प्रायः उनको किसी प्रकार की सहायता भी नहीं देते, बल्कि हर प्रकार से उनके कार्यों में विघ्न डालने में ही तत्पर रहते हैं।

दूसरा प्रश्न यह है कि वर-कन्या एक दूसरे को स्वयं निर्वाचन करें अथवा उनके माता पिता इस सम्बन्ध को निश्चित करें योग्य वर अथवा कन्या का मिलना एक कठिन समस्या है और संसार के प्राणी मात्र ने यह मान रखा है कि अपने जीवन के साथी को खोजने में यथोचित परिश्रम और यत्न करना चाहिये, और यदि आवश्यक हो तो अपने लक्ष को पाने के लिये अपने को आपत्ति में भी डालना चाहिये। पक्षियों में, जन्तुओं में और अन्य सब में यह साधारण बात है कि नर-मादा का आपस का सहवास बड़ी २ कठनाइयों के झेलने के बाद होता है। परन्तु जिस प्रकार का नियम इस समय भारत में प्रचलित है उसके अनुसार वैवाहिक सम्बन्ध में वर-कन्या को तो कोई; कठिनाई ही नहीं उठानी पड़ती है। माता पिता को जो कुछ कष्ट इस सम्बन्ध में हो, कम से कम वर-कन्या के लिये विवाह मण्डप में जाना उतना ही सरल है जितना कि भोजन के लिये चौके में जाना। चूंकि माता पिता सबन्ध स्थिर करते हैं, इस लिये विवाह के साथ जो कुछ स्नेह, अन्वेषण, कठिनाई. उत्साह, साहस इत्यादि के भाव अन्य स्थानों में देख पड़ते हैं वे; यहाँ भारत में नहीं पाये जाते हैं। स्त्री पुरुष स्वय बिना कुछ यत्न

किये ही एक दूसरे को मिल जाते हैं। अपने साथी को खोजना प्राणीमात्र के लिये नैसर्गिक धर्म है। यदि कोई दूसरा हमारे साथी को लाकर हमें न देदे तो हम अपने साथी को स्वय ही खोज लेंगे। साथी की आकांक्षा सब को है। यदि सब प्राणी नहीं तो अधिकांश प्राणी अवश्य इस साथी के लिये खोज करेंगे और उसके प्राप्त करने की आपत्तियाँ झेलेंगे। स्वयं खोज करने में जिस साहस की और जिन भावों की आवश्यकता होती है उनके अनुभव से हम भारतवासी वञ्चित है। नरनारी चाहे और प्रकार के कठिन कार्यों में तत्पर न हों परन्तु अपने पति तथा पत्नी की खोज में अवश्य लगेंगे, यदि कोई दूसरा आकर के हमें इसके प्राप्त करने में सुभीता न कर दे। यदि हम एक कठिन कार्य पर दत्तचित्त होकर लगेंगे तो सभव है कि अन्यों पर भी लगेंगे। पर अब आरम्भ ही से हम को ऐसे साहस के कार्य करने मे वञ्चित कर दिया जाता है अर्थात् जब हमको अपने जीवन के साथी की खोज निकालने का कष्ट उठाना ही नही पडता तब साथ ही साथ हमारे में से वह माद्दा भी ले लिया जाता है जिसके कारण हम और साहस के कार्य कर सकते। न हमको इसकी इच्छा ही रह जाती है न शक्ति ही। इसी कारण हम जीवन भर किसी कठिन कार्य में पड़ने ही नहीं। और जब छोटे कार्यों से भी भागते हैं तो बडे २ की बात ही क्या कहना।

अब इस पर विचार करना चाहिये कि प्रत्येक दम्पति को अपनी अलग गृहस्थी जमानी चाहिये कि नहीं। यह बडे महत्त्व की बात है। श्रेष्ठतम मातापिता के उत्तमोत्तम घर कदापि वैसे नहीं हो सकते जैसे कि अपना घर, यद्यपि यह घर बहुत ही ख़राब, दरिद्री और अस्तव्यस्त क्यो न हो। अलग

गृहस्थी जमाने से स्वावलम्बन की शिक्षा होती है। इसके कारण हमें प्रतिदिन ऐसी बीसों प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जो बड़ों के रहते सामने नहीं आतीं। इससे व्यक्तिविशेषता का प्रादुर्भाव होता है। हमारे देश से व्यक्तित्व जाता रहा है। साहसी से साहसी नवयुवक अपने बड़ों के सामने कुछ विशेष बातों को कहने तथा करने में संकोच करता है। अपने घरों में परिवार के छोटों की दशा बड़ी ही शोचनीय होती है। उनको एकांत मिलता ही नहीं, वे अपने मित्रों से खुलकर वार्त्तालाप तक नहीं कर सकते–किसी साहस के कार्य अथवा अपने मनोरथ की बात तो दूर ही रही। अतः अपने आत्मा के भावों और आकांक्षाओं को भी निर्दयता के साथ दबाना पड़ाता है और ऐसी प्रथा पीढ़ी दर पीढ़ी चली जाती है। क्या ऐसी प्रथा जाति की उन्नति के लिये श्रेयस्कर हो सकती है?

इन सब विचारों से हमारा निश्चित मत यही है कि अपने देश आत्मोन्नति के लिये हमारे गार्हस्थ्य जीवन में बहुत बड़े परिवर्त्तन की आवश्यकता है। दुर्बल शरीर तो बचा रह सकता है, परन्तु जब आत्मा ही का:ह्रास हो गया तो शरीर रह कर क्या कर सकता है? यदि हमको ससार को दिनोंदिन बढ़ती हुई सभ्यता में भाग लेना है, यदि हम यह चाहते हैं कि हमारे देश की वैयक्तिक विशेषता बची रहे यदि हमारी यह आकांक्षा है कि हमारी जाति के नवयुवक तथा नवयुवतियाँ योग्य सुसज्जित, साहसी स्त्री और पुरुष बनें तो आवश्यक है कि गृहस्थी के सुधार में अब अधिक विलम्ब न किया जावे। अब हमें विवाह-संस्कार की प्रचलित प्रणाली के परिवर्त्तन में हिम्मत के साथ पैर बढ़ाना चाहिये। यदि हमने

ऐसा नहीं किया तो अपने भविष्य का सर्वथा सत्यानाश करेंगे; आत्मा और शरीर दोनों ही का ह्रास होगा।

हम खूब जानते हैं कि इसमें दोष भी है। परन्तु गुण ही गुण किसी में नहीं रहते। सब रीति रस्मों में कुछ भलाई और कुछ बुराई है, कुछ लाभ है तो कुछ हानि भी है। मैं स्वयं जानता हूं कि इङ्गलैण्ड के विश्वविद्यालयों में तथा अन्य यूरोपीय विश्वविद्यालयों में भी काम सम्बन्धी बड़ा दुराचार है। धर्मात्मा इस पर यह कहता है कि इस दोष को हटाने के लिये बालविवाह की प्रथा चलाओ। पहले तो विवाह ही केवल कामसम्बन्धी सदाचार का एक मात्र साधन नहीं है तथापि कुछ तो अवश्य ही है परन्तु क्या हम इस भय से कि कतिपय अथवा बहुत से कामी दुराचारी पुरुष पैदा हो जायगे, बाल विवाह से अपनी यौवनावस्था का नाश करदें और अपने ऊपर इतना गुरु भार ले लें जिसको कि न सम्हाल सकें। यूरोपीय विश्वविद्यालयों के येही कामी, दुराचारी नवयुवक, आगे चल कर बडे बडे काम कर दिखलाते हैं। सम्भोगमात्र ही आत्मिक और शारीरिक बल का उतना अधिक नाश करने वाला नहीं है जितना कि सदा उपस्थित रहने वाला यह विचार कि हमारा घर है और हमें पत्नी और सतति का विचार रखना चाहिये, अत: अपनी जान बचाये रहना चाहिये, और ऐसे किसी साहस के काम में न लगना चाहिये जिस में किसी प्रकार का भय उपस्थित हो। केवल वीर्य के नाश से उतनी हानि नहीं होती, जितनी इस प्रकार की आत्मदुर्बलता से होती है। विवाह के बन्धन पड़ जाने से यदि पति-पत्नी का साक्षात् भी न हो तो आत्मा की दुर्बलता का सूत्रपात तो हो ही जाता है। इससे मेरा तात्पर्य्य यह नहीं है कि मैं दुरा-

चार का पक्षपाती हूं। मैं यह चाहता हूं कि मनुष्य का शरीर सवथा पवित्र रहे। मैं पति-पत्नी व्रत और वैवाहिक पवित्रता और परस्पर सत्यता को बड़ा आवश्यक समझता हूं। परंतु यदि भारत की ऐसी अवस्था में हमसे कहा जाय कि तुम उन दो में से किस को अधिक पसंद करते हो-एक कामी साहसी वीर को, अथवा एक पवित्र निरुत्साही अकर्मण्य को, तो मैं बिना कुछ सोचे उस वीर के ही लिये अपना मत दूंगा। और साथ ही साथ मुझको इस बात की भी बडी शङ्का है कि बालविवाह होते हुए भी वास्तव में हमारे शिक्षालय के नवयुवकों में उतनी पवित्रता नहीं है जितनी की समझी आती है। हम तो दोनों तरफ़ से गये।

जो कुछ हो, हमारा यह विचार अवश्य है कि हमें अपना चरित्रबल बढाने के लिये अपने में साहस, आत्माभिमान, निर्भयता, मर्दानगी लाने के लिये, अपने को बड़े बडे कामों के योग्य बनाने के लिये, संसार की बाधाओं को हटाने के लिये, यह अत्यावश्यक है कि बालविवाह की प्रथा एक दम उठा दी जाय। अपने में कठिन कार्यों को करने के भाव को लाने के लिये और साहस के कार्यों का करना सीखने के लिये यह आवश्यक है कि नवयुवक और नवयुवतियाँ अपने पति-पत्नियों को स्वयं ढूंढ़ लें। और हमारी नष्ट हुई वैयक्तिक विशेषता को फिर से प्राप्त करने के लिये आत्मावलंबन, आत्माभिमान और अध्यात्मज्ञान तथा संयम सीखने के लिये यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक दम्पति अपना घर अलग बनावे। जिस प्रकार चाहें अपना, जीवन निर्वाह करें, और अपने आदर्शों और आशाओं की पूर्त्ति अपनी शक्ति और बुद्धि के अनुसार करें। सारांश यह कि सब व्यक्तियों को इसका अधि-

कार और अवसर दिया जाय कि जिस नाम और रूप से वह अपने आत्मा को संतुष्ट कर सकें वे वैसा ही करें।

श्रीप्रकाश।

—:*:—

Man know thyself ! all wisdom centres there

—YOUNG.

मनुष्य तू अपने आप को जान ! सारे ज्ञान का केन्द्र तूही है।

—यङ्ग

उद्धरेदात्मनात्मनम्।

—भगवद्गीता।

आत्मा से आत्मा का उद्धार करना चाहिये।

योग्य सन्तान पैदा करना ।

कहीं भी दृष्टि डालो, सर्वत्र योग्य पुरुष की आवश्यकता है, जहाँ देखो योग्य आदमी ही की ज़रूरत है। यदि धर्म का विचार करने वाली मण्डलियों से पूछो कि धर्मका प्रचार क्यों नहीं होता, तो जवाब मिलता है योग्य प्रचारक नहीं मिलते। समाचार पत्रों के स्वामियों से पूछो कि लेख अच्छे क्यों नहीं मिलते तो वही जवाब मिलता है कि लेखक अच्छे नहीं मिलते। वैद्यों से पूछो तो कहते हैं कि अब पहले के ऐसे योग्य वैद्य नहीं मिलते। तात्पर्य यह है कि हर दिशा से योग्य पुरुष की ही पुकार है। परन्तु योग्य पुरुष नहीं मिलते, इस लिये आज यह विचार करना है कि इतनी माँग होने पर भी योग्यता संसार में इतनी कम क्यों है? और इच्छानुसार योग्य सन्तान कैसे उत्पन्न हो सकती है?

प्रत्येक माता पिता अपनी सन्तान को उत्तम बनाना चाहता है। किन्तु देखना यह है कि सन्तान योग्य और उत्तम क्यों नहीं बनती? सब माता पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे तन्दुरुस्त खूबसूरत गुणवान् और किसी न किसी बात में विशेष योग्य और अति निपुण हों। परन्तु दुनिया में साधारण मध्यम अवस्था की योग्यता के ही लोग अधिक संख्या में होते हैं। इसका कारण क्या है कि मन में सफलता की इच्छा रहने पर भी कृतकृत्य होने वालों की संख्या थोड़ी और अकृतकृत्यों की संख्या अधिक है। दुनिया में कष्ट पीडा अधर्म धूर्तता तथा निर्दयता क्यों अधिक है? इसका कुछ कारण अवश्य होना चाहिये।

यद्यपि इसके और भी कारण हो सकते हैं, मगर इस शोचनीय अवस्था का एक मूल कारण यह है कि हम योग्य आदमी पैदा करना नहीं जानते ।

यदि हम यह जान लें कि योग्य और उत्तम सन्तान किस तरह पैदा होते हैं तो हम केवल अपना ही नहीं, वरन् सारे संसार का उपकार कर सकते हैं ।

इसमें संदेह नहीं कि संसार का सुधार परमेश्वर के अधीन है, परन्तु ईश्वर ने दुनिया चलाने के कुछ नियम बनाये हैं, अतः यदि हम उसके बनाये नियमों के अनुसार काम करें तो हम भी संसार के सुधार का बड़ा साधन बन सकते हैं । हम जब देखते हैं कि हमारे देश में छल कपट झूठ व निर्दयता बेईमानी ईर्षा द्वेष अपना २ राज जमाये हैं तो हम दुखी होते हैं । जब हम देखते हैं कि हमारे देशभाई रुपये के लालच में पड दूसरे निरपराध निर्दोष देशभक्त भाई को कलंक लगा कर उसकी संपत्ति और कामके गाहक बन बैठने में नहीं झिझकते तब हम शोक से पीड़ित हो अधोर हो जाते हैं । हम सोचते हैं कि देश का सुधार अच्छे २ स्कूल और कालिज बनाने से तथा धर्मप्रचार से होगा, अथवा किसी अन्य प्रकार से होगा । क्योंकि हम स्वयं निर्बल आत्मा हो कर क्या कर सकते हैं । परन्तु हमको जानना चाहिये कि यदि हम पितृ और मातृ धर्म को व्रत मान कर पालन करें तो हम स्वय उत्तम सन्तान द्वारा जाति और देश का सुधार कर सकते हैं । याद रखना चाहिये कि संसार में कोई काम बिना नियम के नहीं होता । समय समय पर ऋतुका बदलना, कभी गर्मी कभी सर्दी का पड़ना हरी हरी पत्तियों पर सफ़ेद २ ओस के मोतीका झलकना रंग विरंगे फूलों का खिलना, नदी का अपने तटों के बीच

बहना, समुद्र में तूफ़ान का चलना, चींटी से राजा तक का जन्म और मरण सब नियम से ही होता है। पशुविज्ञान हमको बताता है कि उत्तम पशु नियम पूर्वक पैदा किये जा सकते हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि बोझ ढोने वाले घोड़े किस तरह पैदा किये जा सकते हैं और घुडदौड़ वाले किस तरह? अमरीका में दूध पैदा करने वाली गऊ और मांस पैदा करने वाली गऊ के बडे बडे कारखाने हैं। जिस प्रकार उत्तम और मध्यम पशु बनने में नियम की आवश्यकता है उसी प्रकार मनुष्य को उत्तम या मध्यम देश-द्रोही या देश-भक्त, निर्बल या बलवान्, रूपवान् या कुरूप, झूठा या सच्चा, योग्य या अयोग्य सतान बनाने में भी नियम पालने पडते हैं। जब कभी माता पिता से अचानक अच्छे नियमों का पालन हो जाता है तो सन्तान योग्य पैदा होती है। नहीं तो साधारण या अयोग्य पैदा होती है। जिसके कारण छोटी आयु वाले, निर्बल, बीमार, डरपोक, अधीर, कुरूप, दुराचारी और पराधीन व परतन्त्र सन्तान पैदा होती है।

वर्तमान काल में बडे २ विचारशील वैज्ञानिकों का कथन है कि दुराचारी निर्दय व निर्बल आदमियों के पैदा होने का सब से बडा कारण यह है कि अधिकांश लोग स्त्री का संग केवल विषय-भोग के लिये करते हैं। सन्तान की उत्पत्ति के लिये नहीं करते। सन्तान तो बिना बुलाये ही उपस्थित हो जाती है। अतः अतिथि, जिसको पिता ने इच्छा से न बुलाया हो और जिसके आगमन से माता पिता को क्लेश और अशान्ति का भय हो उसके तो ललाट में गर्भ-स्थिति के पहले ही अपमान असफलता और अयोग्यता का चिन्ह पड़ जाता है। ऐसे ही बालक कृतकृत्यता के शिखर तक नहीं पहुँचते,

क्योंकि उनके माता पिता ने उसको किसी शिखर पर पहुँचाने का विचार ही उस समय नहीं किया जब उसकी उत्पत्ति का कारण बने थे। बहुत से विद्वानों का विचार है कि वे लोग जो दुनिया में बिना बुलाये हुए आकर भी योग्य और पराक्रमी हो गये हैं, अवश्य ही दैव संयोग से योग्य अवस्थाओं मे पैदा हुए थे। परन्तु वस्तुतः जो लोग सर्वथा कृतकृत्य हुए है और जिन्हों ने अपने जीवन की अमिट छाप ससार और समय के पत्तो पर लगाई है, वे वेही लोग हैं जिनके माता पिता ने बडे प्रेम और सम्मान से नये जीवन को उत्पन्न किया है। वैज्ञानिक लोग बताते है कि जिस तरह कुम्हार जिस रूप रग और जिस ढब का खिलौना या बर्तन बना सकता है उसी तरह माता पिता मिलकर अपनी सन्तान को बना सकते हैं। पर तब, जब कि वे गर्भस्थिति के पहले अपने वीर्य में Will इच्छा शक्ति के बल से कुम्हार की मिट्टी की सी लचक और लेस पैदा कर लें और गर्भस्थिति के पश्चात् अपने Will और कर्मों के द्वारा सन्तान पर यथोचित सस्कार डालते रहें।

अब प्रश्न यह होगा कि वे कौन से नियम है जिनके पालन करने से इच्छा के अनुसार सन्तान उत्पन्न हो सकती है?

सबसे प्रथम तो नियम यह है कि सतान यदि स्वस्थ तीक्ष्ण बुद्धिवाली प्रेमपात्र और स्वरूपवान् उत्पन्न करनी हो तो माता का ब्रह्मचर्य अवश्य पूरा होना चाहिये और उसका स्वास्थ्य उत्तम, चित्त धीर और शील अच्छा होना चाहिये। यदि माता को किसी प्रकार का कष्ट चिन्ता या रोग हो तो उसको जबतक ये अवस्थायें दूर न हो जायँ तबतक गर्भ न धारण करना चाहिये। दूसरे उन स्त्रियों को भी गर्भ न धारण करना चाहिये जिन्हें अपने सबॉर सिंगार का ध्यान अधिक

है और जो बच्चों की सेवा से जी चुराती हैं या जिनमें धर्म और उपासना का भाव नहीं है।

इसी प्रकार पिता बनाने के योग्य वह पुरुष है जिसने शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन किया हो, जो मदिरा आदि का सेवन न करता हो और सन्तानोत्पत्ति की इच्छा रखते हुए भी सदाचारी हो। लेकिन इन सबसे अधिक आवश्यक बात तो यह है कि माता पिता में परस्पर प्रेम हो और वे दोनों तन मन से मनमानी सन्तान पैदा करने के लिये एकाग्रचित्त होकर एक दूसरे के सहायक हों। वैज्ञानिक बतलाते हैं कि माता पिता को एक मास पहले से गर्भस्थिति के लिये उद्योग या प्रयत्न करना चाहिये। क्योंकि भविष्यसतान पर उसी समय संस्कार पड सकते हैं जिस समय से माता का गर्भबिन्दु परिपक्व होना आरम्भ होता है। माता चाहे तो उसी समय से अपनी भविष्य सन्तान पर प्रभाव डाल सकती है। और पिता में भी, यदि वह सदाचारी व स्वस्थ है तो, प्रसग के एक महीने पहले Spermcells बनना आरम्भ होगा। यदि पिता कुकर्मी दुराचारी हो तो भी यदि वह एक महीना पहले अपनी बुरी आदत छोडकर गर्भाधान करने का व्रत धारण कर अच्छी इच्छाएँ करे तो अच्छी सन्तान उत्पन्न करने का प्रभाव Spermcell पर पडता हुआ उन Zoosperm पर पडेगा जो Spermcell में पैदा होंगे, और इसी तरह सुलक्षणता के संस्कार Zoosperm में अंकित होंगे और गर्भ में जाकर सन्तान को प्रभावशाली करेंगे। गर्भाधान के कुछ दिनों पहले की पिता की शारीरिक और आत्मिक अवस्था का बहुत बड़ा Direct असर सन्तान पर पड़ता है। और उसके बाद पिता का प्रभाव गौणरूप से और माता का

प्रभाव मुख्य रूपसे पड़ता है। उस मास में, जब कि पिता माता सन्तान पैदा करने की चेष्टा करते हुए अपने को तैयार कर रहे हों, अत्यन्त आवश्यक है कि सन्तान के विषय में दोनों के विचार एक से हों, उनकी इच्छा एक ही हो। वैज्ञानिक लोग बताते हैं कि कोई पिता यदि ऐसी आदत रखता हो कि वह आदत सन्तान को न देना चाहता हो, तो इस व्रत के समय वह आदत छोड़ दे। यकायक न छोड़ सके तो दो तीन महीने तक यत्न करे, जब शुद्ध हो तब गर्भाधान करे।

जिस महीने में गर्भाधान की तैयारी हो उसको व्रत के दिनों के समान बिताना चाहिये। उस महीने में मदिरा, तमाखू, या अन्य बुरे भोजनों से परहेज करना चाहिये। यदि पिता को नियम पालन का अभ्यास न हो तो यत्न करके गर्भाधान के मास में यम नियम व्यायाम और विचार से रहना चाहिये। बराबर सब स्थान और सामान साफ रक्खे। हर काम होशियारी से सलीके के साथ करे। यदि पिता को झूठ बोलने की आदत हो तो सच बोलने की आदत डाले, आलसी हो तो फुर्ती का अभ्यास करे। अपने सारे काम यथा-शक्ति विवेक और शान्ति के साथ करने चाहियें। माता को भी उचित है कि गर्भाधान के दिनों में शरीर, वस्त्र, गृह आदि को साफ और स्वच्छ रक्खे, सारे कामों को नियम पूर्वक करे और घर की सारी चीज़ें बड़े क़ायदे से रक्खे, किसी से लड़ाई न करे, इधर उधर जाने तथा अधिक वार्तालाप करने से परहेज करे। परन्तु इतना काम करले कि जिससे परिश्रम का अभ्यास और फुर्ती रहे। इस समय स्त्री और पुरुष दोनों अलग २ बिछौने पर सोवें। सबसे आवश्यक बात यह है कि यथेप्सित सन्तान बनाने के लिये माता पिता का विश्वास

दृढ़ और इच्छा प्रबल हो। पिता माताको विश्वास रखना चाहिये कि हम ऐसा करेंगे और जरूर फलीभूत होंगे। इस इच्छा मे इतनी शक्ति होती है कि सन्तान को जैसा चाहे वैसा बना सकते हैं।

इस समय यह भी निश्चय कर लेना चाहिये कि हम अपनी सन्तान को कौन सा काम या कला सिखावेंगे। उसे राजनैतिक नेता, शासक, सिपाही, वकील, वैद्य, इञ्जीनियर, ठेकेदार, इन्सपेक्टर, सौदागर, जमींदार, दुकानदार, पंडित वैज्ञानिक, तत्त्वदर्शी या ऐतिहासिक जो कुछ बनाना हो उसीके विषय का थोडा बहुत ज्ञान पिता माता को अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिये। सन्तान को जिस विषय का पंडित बनाना हो उस विषय की पुस्तक और समाचार पत्र पढना, नक्शे देखना, वैसे बडे आदमियों की कथाएँ सुनना और स्वयं उसी विषय पर बुद्धि दौडाना चाहिये। इस समय मा बाप को यह भी भावना करनी चाहिये कि हमारी सन्तान निर्दोष को दोष लगाकर, सचको झूठ और झूठ को सच बनाकर, अपने भाई का गला काट कर, देश उन्नति की कामना को पददलित कर, या जाति और देश को अपने थोडे स्वार्थ के लिये नाश के मार्ग में अग्रसर करने वाली न हो।

गर्भाधान के उपरान्त मा को बडे साफ और सुन्दर कमरे में रहना चाहिये। उस कमरे में अच्छे २ योग्य महानुभावों के चित्र रखे रहने चाहिये। गर्भाधान के पहले पुरुष का असर पडता है, उसके बाद ९ महीने तक सन्तान की भलाई बुराई माता के हाथ में रहती है, फिर पिता गर्भपर Directly प्रभाव नहीं डाल सकता।

हमारे पूर्वज लिख गये हैं कि सन्तान पर माता पिता के

संस्कारों का प्रभाव पड़ता है, यह बात बहुत ठीक है। पाश्चात्य विद्वान् भी इस बात को पूर्णरूप से मानते हैं। यदि कोई पूछे कि मा बाप के संस्कारों का असर सन्तान पर कैसे पड़ता है? तो उसे मालूम होना चाहिये कि मनुष्य में मूल पदार्थ दिमाग़ या भेजा है, जहाँ मन रहता है। यह एक स्तंभ पर खड़ा रहता है, इसके नीचे तार की तरह पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ बँधी हुई है। और बाँधने का स्थान या गाँठ सब की अलग २ है। इस तार या इन्द्रिय का एक सिरा गाँठ से जुड़ा है और दूसरा शिरा शरीर के बाहर आकर अपने २ साधन अर्थात् आँख नाक कान आदि से मिला रहता है। आँख जब पहले कोई वस्तु देखती है या कान शब्द सुनता है तो उसकी खबर भेजे के मसाले द्वारा मन के पास पहुँच जाती है और वह चलायमान होता है। फिर मनुष्य को पदार्थ या शब्द का ज्ञान होता है। यह ज्ञान क्या है? देखे सुने पदार्थ के केवल सूक्ष्म सूक्ष्म चित्र है। मन की आज्ञा से यह चित्र जब चाहे तब आँखों के आगे आजाते हैं। जहाँ सूक्ष्म लक्षण विचार या इच्छा आदि का निवास है उसी स्थान या भडारकोष्ठ से वह नाडी-द्रव्य (वीर्य व रज) पैदा होता है जो रक्त में क्रियाशक्ति प्रदान करता है। अगर भडार में किसी चित्र लक्षण या इच्छा की प्रबलता या अधिकता होती है तो वह भी सूक्ष्म रूप से अधिकांश नाडी-द्रव्य मे मिलकर रक्त में मिलता है।

वीर्य रुधिर से बनता है, इसलिये वीर्य में इच्छा का प्रभाव पड़ता है। उससे जो सन्तान उत्पन्न होती है वह अवश्य अपने मा बाप के गुण कर्म और इच्छा के अनुकूल होती है। इस कारण मा बाप चाहे जैसी सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं-

यह बात बिलकुल सच है। मा बाप चाहें तो खराब से खराब अथवा अच्छी से अच्छी सन्तान पैदा कर सकते हैं।

महेशचरणसिंह।

——(*)——

उन्नति जीवन का नियम है,—अभी तक मनुष्य, मनुष्य नहीं हुआ है।

—Robert Browning

—:*:—

दुःखों के याद आने से वर्तमान सुख का माधुर्य बढता है।

—पोलक।

—:*:—

एक अच्छी माँ सौ अध्यापकों के बराबर है।

—George Herbert

—:*:—

परिश्रम सुख का मार्ग है।

—A. Stevens

—:*:—

भाग्य एक बाजार की भाँति है जहाँ यदि तुम कुछ देर ठहरो तो अकसर भाव गिर जाता है।

—बेकन।

—:*:—

बच्चों की अकाल मृत्यु, उसका कारण और बचने का उपाय।

हिन्दुस्तान के बहुतेरे बच्चे अकाल ही में मरते हैं, जिससे कि इस देश की बडी भारी हानि होती है। उसे देख, इस विषय में कुछ लिखना मुझे, अति आवश्यक जान पडता है। प्रायः तीस वर्ष के हिसाब से मालूम होता है कि सौ में ३७ बच्चे एक वर्ष भी नहीं ठहरते। शेष में कुछ पाँच वर्ष के भी नहीं होने पाते कि वे काल के गाल में जा पडते हैं। भला जहाँ बच्चों की मृत्यु की इतनी बडी संख्या है, उस देश की उन्नति कैसे हो! जाडे में जो फूल खिलते हैं केवल चार ही दिन के लिये फुलवारी को शोभित करते हैं, और गरमी के दिन आते ही सूख कर नीचे गिर जाते हैं। क्या विधाता ने भी इन बच्चों को जाडे के फूल के समान ही अस्थायी बनाया है? नहीं, कदापि नहीं। इन बच्चों के जन्म का कुछ और ही आदर्श था। देश-हितैषी तथा डाक्टरों के सिर घूम गये, पर वे इन बच्चों को अकाल मृत्यु से छुडाने में समर्थ नहीं हुए। ऊपर का जो हिसाब है वह कलकत्ते का है। अतएव, कलकत्ता तथा आस पासके गाँवों के विषय में, मैं कुछ लिखना चाहता हूं। पाठक इसी से समग्र भारत की भी दशा जान सकेंगे।

कलकत्ता, जो भारतवर्ष की राजधानी थी, एक ऐसा बडा शहर है जहाँ संसार के प्रायः सब देशों के लोग आकर बस गये हैं और वहीं अपने २ कारबार खोल दिये हैं। भिन्न २ देशवासियों का स्वास्थ्य भिन्न २ है, और उनके प्रसूति के घर

का बन्दोबस्त भी अनेक है। एक देश के रहने वालों के लालन-पालन की रीति दूसरे देश के रहने वालों की रीति से नहीं मिलती। मै यही दिखाना चाहता हू कि इनके रिवाज, रसम और अन्य २ बदइन्तजामियों के कारण बच्चों को कहाँ तक असुविधा होती है। पहले मैं हिन्दुओं का हाल सुनाता हूँ। क्योंकि हिन्दुओं की संख्या, कलकत्ते तथा और २ आस पास के जगहों में बहुत बडी है। गरीब हिन्दुओ के प्रसूति के घर का बन्दोबस्त तथा बच्चों का लालन पालन बहुत ही बुरा है, अतएव गरीबों के बच्चे ही बहुत मरते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो न अधिक अमीर न अधिक गरीब हैं। इनके भी तीन भेद हैं—(१) बङ्गाली, (२) मारवाड़ी, और (३) बम्बई के बनिये। बहुतेरे बङ्गाली नौकरी करते हैं अतएव वे किसी प्रकार काम-चलाऊ ऐसे घर में रहते हैं जहाँ स्वास्थ्य रक्षासम्बन्धी कोई उपाय नहीं, और अपने स्वास्थ्य को मिट्टी में मिला देते हैं। कुछ ऐसे बङ्गाली भी हैं जिन्हें अपने अगरेज भाइयों का रहन सहन अच्छा जंचता है और स्वच्छ गृहों में रहते हैं। और, व्यर्थ के रोग के झझटों से किनारे रहते हैं।

मारवाडियों की जाति, धनी होती है, और उनका धर्म उन्हे पुकार कर कहता है कि जीव की रक्षा करो, पर तब भी ये स्वास्थ्य के विषय में बहुत पीछे पडे हैं।

यह कुछ अतिशयोक्ति भी नहीं होगी यदि मैं कहूं कि उनकी सौ पीछे ५० स्त्रियाँ प्रसूतिका घर से सीधे यमपुर को सिधारती हैं और उनके बच्चे फी सदी ७० ऐसे हैं जो दूध के दाँत जमने के पूर्व ही एक बार और जन्म लेते हैं। पर भाग्यवश, उस जाति में भी स्वास्थ्य-सुधार का सञ्चार हो [illegible], इनकी स्त्रियाँ तो कहती हैं कि प्रसूतघर में जितनी दुर्घटनायें होती हैं

वे प्रायः भूतों की करामात है और इसलिये बच्चों की मृत्यु के विषय में मनुष्य का चारा नहीं है ।

उनके प्रसूतघर का बन्दोबस्त सुनते ही पाठक समझ जा सकते हैं कि वे स्वयं रोग और मृत्यु को न्योता देती हैं । उनके यहाँ प्रसूतघर का कोई मुख्य स्थान नहीं है । यदि वे आवश्यकता देखती हैं तो पैखाने के पास में एक बडी सजी हुई कोठरी में जहाँ उजाला और वायु भी लुक छिपकर कुछ देख सके, प्रसूतघर ठीक कर देती है । गर्भवती स्त्री के उस घर में जाने के पूर्व ही बुड्ढी स्त्रियाँ भलीभाँति सब खिडकियों तथा द्वारों को कम्बल के परदे से ऐसा बन्द कर देती हैं कि वायु भी न जा सके । तब वे भविष्य माता को उस घर में जाने की आज्ञा देती है । वे उस घर की लम्बाई चौडाई का कुछ पर्वाह न कर एक परदा बीच में लटका के, उसे दो खण्डों में, कर देती हैं । परदा भी पुराने फटे टाट का होता है जो गरदा से भरा और तरह २ के कीडे मकोडों का घर रहता है । उन दो भागों में से एक माता के लिये और दूसरा बूढी स्त्रियों के निमित्त रहता है । बच्चे का भार अधिकतर एक मैली कुचैली चमाइन के सिर पर रहता है । पाठकों को यह सुनने से आश्चर्य्य होगा कि दयालु स्त्रियों का प्रथम काम यही है कि वे माता को लगातार ५ दिन तक तनिक भी आँख झपने नहीं देतीं । वे समझती हैं कि प्रसूत अवस्था में सोने से बहुत बुराइयाँ होती हैं और भूत, प्रेत उपद्रव कर माता को मार डालते हैं । इस कुरीति का सुधार अब वे लोग भी करने लगी हैं और सूर्य्योदय से पूर्व दो या तीन घण्टे सोने की आज्ञा देती हैं । माता को सोने के लिये एक चारपाई दी जाती है जिस पर पुराना कम्बल और एक गद्देदार तोशक बिछा

रहता है। माता को ५ दिन तक बबूल का गोंद, गुड़, और अजवाईन के सिवाय और कुछ खाने को नहीं मिलता। यहाँ तक तो प्रसूती की दशा हुई, अब बच्चे की हालत सुनिये। यदि बच्चा किसी कारण से रोता न हो तो स्त्रियाँ उसे गूँगा समझ कर छोड़ देती हैं। और यदि वह बहुत रोता हो तो दाई झट नारा को फराठी अथवा मुर्चेदार पुरानी छुरी से काट डालती हैं। खून यदि बहने लगे तो उसके रोकने के लिये नारा पर थोडी रुई रख दी जाती है और तब दाई झट तिल के तेल से भींजे हुए गमछे से बच्चे को मुलायम हाथ से पोंछ डालती हैं जिससे जाँवर कुछ २ छूट जाता है। बच्चे को इस तरह से पोंछ पाँछ कर चारपाई पर सुला दिया जाता है और वह बाप दादे के फटे पुराने कपड़े से भलीभाँति ढाँक दिया जाता है, कपडे पुराने रहते हैं कि जिसमें बच्चा भी अपने बाप, दादों की तरह बूढ़ा हो। बच्चे का मुँह यहाँ तक ढाँक दिया जाता है कि वह बिचारा भलीभाँति साँस भी नही ले सकता। उस घर में दिन रात एक चिराग जलता रहता है और कोयले भी धधकते रहते हैं कि जिसमें कोठरी गर्म रहे। चिराग और कोयले के सदा जलते रहने से वायु दूषित हो जाती है और कारबोनिक एसिड का विषैला गैस तमाम फैल जाता है। उस घर में जितने लोग रहते है सभी के सिर चकराने लगते हैं और सब बेहोश हो गिर जाते है। पर इन सबका कारण स्त्रियाँ 'भूत' ही बतलाती है। अच्छा यह तो घरके भीतर को दशा हो चुकी, अब बाहर की दशा सुनिये। पास वाला बरामदा भी कपडे से घेर घार दिया जाता है और वहाँ नौकर, चाकर रात को रहते है। नौकरों को गाँजा और भाँग भरपूर दिया जाता है और वे रातभर भाँग पीकर गाँजा का

दम उड़ाते और गुलगपाड़ा मचाते हैं जिसमें भीतर के लोग जागे रहें। वे हर एक पाँच मिनट पर एक प्रकार के यन्त्र से इतनी जोर से आवाज करते हैं कि सोना क्या, पलक झपना भी मुश्किल हो जाता है। इन इन्तजामों को सुनकर निश्चय आपको आश्चर्य्य होगा कि माता और बच्चा ४० दिन तक ऐसी अवस्था में रह कर कैसे जीते हैं। बम्बई के बनियों न तो कभी यन्त्र से ही शब्द निकालते हैं और न माता ही को जगाये रखते हैं।

प्रसूतघर को कलकत्ते की कालकोठरी भी कहें तो अत्युक्ति नहीं। ये बूढ़ी स्त्रियाँ अनजान से और मूर्खता से बच्चे को विष दे देती हैं। बच्चा ज्योंहीं इस लोक में आता है कि वे झट उसके मुँह में अफीम की गोली रख देती हैं। प्राय विरले ही बच्चों के मुख में अफीम की गोली ४० दिन तक नहीं छोड़ी जाती। धनिक मुसलमानों के यहाँ भी प्रसूतघर का किवाड़ प्रायः बन्द ही रहता है, पर हाँ एकदम बन्द नहीं कि वायु भी न जासके। वे भी धधकता हुआ कोयला घरमें रखते हैं। बम्बई देश के धनी मुसल्मान जो मामेन और सुरती कहे जाते हैं उनकी संख्या कलकत्ते में बहुत है। वे अपने बच्चे को कई एक तह कपड़े से बाँध देते है कि बच्चा हाथ पैर भलीभाँति हिला डोला न सके। वे जेबी रुमाल के समान १८ इञ्च, ४ वर्गाकार कपड़े के टुकड़े लेते हैं और और एक छोर को दूसरे छोर पर ऐसा रखते हैं कि टुकड़ा वर्गाकार से त्रिभुजाकार हो जाता है। पहले टुकड़े से बच्चे की छाती दोनों भुजायें बाँधी जाती हैं, दूसरे से कमर के नीचे का भाग और हाथ की कलाई बाँधी जाती है, तीसरे से कमर और हाथ की केहुनी से नीचे वाला और कलाई से ऊपर वाला भाग बाँधा जाता

है, और चौथे से जाँघ और ठेहुने कस दिये जाते हैं। पैर और सुपली भलीभाँति कपडे से ढाँक दी जाती हैं, बाँधी नहीं जातीं। सब गिरह सामने ऊपर की ओर रहती हैं। और जब कभी माता को अथवा दाई को बच्चे को उठाने की आवश्यकता पडती है, तो वह एक हाथ बच्चे के सिर के नीचे और दूसरे से कोई एक गिरह पकड कर बच्चे को उठा लेती है।

अब मैं बच्चों के दूध पिलाने और इसका स्वास्थ्य पर असर पड़ने के विषय में कुछ सुनाता हूँ। यह सभी समझते है कि बच्चा भूखा होने पर रोता है और छाती से लगाते ही चुप हो जाता है। अधिक वा कम खिलाना, पिलाना स्त्रियाँ समझती ही नहीं और इसका गुण दोष भी नहीं जानतीं। यदि अधिक वा कम दूध पिलाने के कारण बच्चे को कुछ हो भी जाय तो स्त्रियाँ उस ओर ध्यान भी नही देतीं। माता यह नहीं समझती कि हमारी मानसिक प्रौढता तथा दैहिक सुस्थता से दूध पर क्या असर पड़ता है। जो माता स्वास्थ्य-सम्बन्धी उपायों को नहीं जानतीं और न स्वस्थ रहती हैं उनका बच्चा भला पुष्ट कैसे हो?

बच्चों को, बहुतेरी बीमारियाँ सताती रहती हैं, उनमें जमुआ और पिंडुरी की बीमारी प्रधान है। जमुआ प्राय. बच्चों की १५ दिन की आयु के पूर्व हुआ करता है और पिंडुरी तो बहुधा बढ जाया करती है। ये दोनों बीमारियाँ साध्य हैं, पर सावधानता का प्रयोजन अधिक है। इस विषय में सफ़ाई रखना बहुत ही लाभकारी है। सफाई पवित्रता से किसी प्रकार कम नहीं है तथापि हमारे भारतवर्ष के प्रसूतघर में इसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता। लड़कों को साबुन से स्वच्छ रखने के विषय में कुछ पढ़े लिखे पुरुषों के

अतिरिक्त और कोई जानता ही नहीं। बच्चा जब तक प्रसूतघर में रहता है तब तक उसे लोग दिन में दो बार स्नान कराते हैं, पर बूढ़ी स्त्रियों के मत के अनुसार स्नान कराने का अर्थ गरम जल छिड़कना है। माँ तथा बच्चे को शायद ही कभी सिर से पैर तक स्नान करना पड़ता होगा। दूध की सफाई तथा घर और आस पास की सफाई से बच्चे की बीमारी बहुत कुछ रुक सकती है। अंगरेजों की रीति के अनुसार लालित बच्चों का स्वास्थ्य देखकर यह निश्चय होता है कि बच्चों को कितना भी खिलाया पिलाया जाय, पर सफाई बिना उनका स्वास्थ्य नहीं सुधर सकता। कलकत्ते की वे बस्तियाँ जहाँ झोपड़ी की भरमार है और जो कूड़ा करकटों में भरी रहती है, वहाँ के बच्चों की अवस्था बहुत ही क्षीण होती है, पर ज्योंही स्वास्थ सुधार के नियमों का प्रचार हुआ, कि एकाएक बच्चों का स्वास्थ्य बन जाता है। बच्चों की बीमारी का हिसाब देखने से मालूम होता है कि असावधानता, अयोग्य खाना, पकड़े का प्रभाव, स्वास्थ्य सुधारने के नियमों की उपेक्षा इत्यादि कारणों से बच्चे अधिकतर रोगग्रस्त होते हैं। ऐसा कई बार देखा गया कि स्वास्थ्यसुधार की रीति के अनुसार साफ घरों में जाते ही बच्चों के स्वास्थ्य में भी बहुत कुछ उन्नति हो गई है।

केवल बात कहने से अच्छा होता कि हिसाब की ओर भी दृष्टि डाली जाती। इसके देखने से मालूम होगा कि किन २ बीमारियों से बच्चे अधिकतर अस्वस्थ रहते हैं, और तब मैं उनके रोकने के विषय में यह दिखलाऊंगा कि सैनिटरी प्रथा प्रचार से कहाँ तक बीमारियाँ हट सकती हैं। बच्चो की मृत्यु का हिसाब ५ वर्ष तक का देखा गया है और मालूम होता है कि बच्चे Bronchitis (श्वासनाड़ी के फूलने) से, जमुआ

पिंडुरी से तथा आँख के गोलमाल से अधिक मरा करते हैं पर बहुत कम, और मलेरिया से तो बहुत कम मरते हैं।

असावधानता के कारण बीमारी होती है। मैं कह चुका हूँ कि धनुर्वात (अमुआ), जो बहुतेरे बच्चों की प्राणघातिका बीमारी है, बहुत कुछ रोक दी जा सकती है यदि नार काटने तथा इसके छू छा करने में सावधानता की जाय। बहुतेरे डाक्टर अशिक्षित भारतवासियों के प्रसूत-घर में स्वास्थ्य-सुधार के लिये अजस्र परिश्रम कर थक जाते है और उलटे लाभ के बदले व्यर्थ मे हाथ लगाने के लिये दोषी होते है। मुझे यह कहते कुछ सतोष होता है कि कहीं २ स्त्रियो ने स्वयं ही धार्मिक-अन्धविश्वासो तथा भूतादि के डर से मुख मोड लिया है और सुधार की रीति प्रचलित की है। पर दुर्भाग्य-वश ऐसी स्त्रियों की सख्या बहुत ही कम है।

वस्त्राभाव के कारण बीमारी।

वहुतेरे दीन भारतवासी फटे चिथड़ो को लपेटे रहते हैं और अपने बच्चो को कुछ ऐसा कपडा नहीं पहिराते जिससे उनको सर्दी न लगने पावे। उन बच्चों के दुःख का परिमाण लिखते नहीं बनता है पाठक स्वयं उन दु:खों को सोच लें। मजदूर प्राय अपने बच्चों को दिगम्बर ही रखते है कि जिसमें उनके बच्चे हट्टे कट्टे और पुष्ट हों और बडे होने पर अधिक काम कर सकें। मध्य दरजे के लोग जो न अधिक धनी और न अधिक दीन हैं, अपने बच्चों को दोपहर के बाद, अड़ोस पडोस को दिखलाने के विचार से जूता, पैताबा, कोट इत्यादि पहिरा देते हैं, पर दीप जलते ही कपड़े उतार बच्चों को सुला देते है। अमीर और शौकीन लोग लड़के को रेशमी पतले बेल बूटेदार कपड़े पहिराते हैं। अतएव सरदी नहीं रुकती और

बच्चों को श्वास सम्बन्धी रोग घेर लेते हैं, इन्हीं कारणों से बच्चों के श्वास की नली और फेफड़े की नसें फूल जाती हैं प्रायः जिससे वे काल के ग्रास बन जाते हैं। लाख सिर पटकते रहने पर भी स्त्रियाँ आप की एक नहीं सुनेंगी बल्कि वे कहेंगी कि जो हमारी माताएं हमारे लिये कर चुकी हैं, हम भी अपने बच्चों को वैसे ही करेंगी।

भोजन में असावधानी।

अयोग्य और अधिक खिलाने अथवा दूध पिलाने से बच्चों को अनपच होता है और जब तक हमारे घर की स्त्रियाँ खिलाने पिलाने के नियमों को नहीं जानेंगी तब तक हमारे घर की दशा भी ऐसी ही रहेगी और हमारे बच्चे भी इसी प्रकार अनपच के पेट में जाया करेंगे। मारवाड़ी और बनियाँ अपने बच्चे को ४ थे ही मास से दाल, भात, आलू का भरता हलवा, रोटी इत्यादि सूखी चीजें खिलाया करते हैं। इससे प्रत्यक्ष मालूम होता है कि वे अपने प्यारे बच्चों की पाक-स्थली के साथ कितना अनर्थ करते है। माता की मूर्खता के कारण बच्चे को पिण्डुरीकी बीमारी हो जाती है और धीरे २ अनपच, आँव नजला, कलेजे का बढ़ना, इत्यादि अनेक रोग बच्चे का आखेट कर लेते हैं। नसों के चढ़ने की बीमारी (Ricket) भोजन के गड़बड़ से होती है और इस रोग से अधिकतर हमारे बच्चे ग्रस्त रहते हैं। अनेक विज्ञवर लोगों ने इस बीमारी के अस्तित्व में आपत्ति की है पर तौ भी इस रोग के चिन्ह स्पष्टतया ६ मास की आयु से दीख पड़ते हैं। यद्यपि यह प्राण-नाशक रोग नहीं है पर तौ भी यह अनेक रोगों का द्वार खोल देता है। यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि दूध के अभाव तथा अधिक मूल्य के कारण लोग टीन में बन्द किये हुए

दूध का प्रयोग करते हैं। किन्तु इससे वह फल नहीं, जो असली दूध से प्राप्त होता है। धनुर्वात (Sewrey) रोग का नाम आगे कोई नहीं जानता था पर अब इस रोग से भी बच्चे मरने लगे है। यद्यपि रोज़नामचे में इस रोग का नाम अधिक नहीं मिलता पर तौ भी दाँत निकलने के बाद बच्चे को यह रोग हो जाया करता है।

छूत की बीमारी।

बहुत सी ऐसी जातियाँ अभी तक हैं जो अपने बाल बच्चों को जान बूझकर शीतला और गोटी के फन्दे में डाल देती हैं। बड़ाबाजार में बहुधा अनेक परिवार के लोग एक ही घर में रहते हैं पर तौ भी वे छापा लगवाने से इन्कार करने लगते हैं। जब उन परिवारों में गोटी की बीमारी उठती है तब भी वे अपने बच्चों को अपने प्यारे पीड़ित-मित्रों से भेंट करने देते हैं। माताएँ स्नेहवश जब कभी पीड़ित परिवार में रोगग्रस्त बच्चों को देखने जाती हैं, तो उस समय भी बच्चा उनके साथ रोगी के समीप ले जाया जाता है। वे जान बूझ कर कीड़े को अपने घर बुलाती है और इसी में अपने को धन्य समझती हैं। वे समझती है कि यदि हम अपने स्वस्थ लडकों को शीतला माता से हटा रखेंगी तो शीतला देवी उन निरोगी बच्चों पर अप्रसन्न होंगी और उनके सताने के निमित्त भयानक रूप धारण करेंगी बच्चों को अपनी माता की अज्ञानता की सज़ा अवश्य ही भुगतनी पड़ती है।

बहुत से ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि बच्चों को नौ मास के बाद जितनी बीमारियाँ होती हैं वे सब प्रायः दाँत जमने के कारण होती हैं। पर ये ऐसे लोग हैं जिन्हें लेना एक न देना

दो है। ये, ऐसे हैं कि बच्चों को दवा का लाभ भी नहीं उठाने देते। कई बार जी चाहा कि इन मूर्खों को सुझा दूँ की अनपच, जमुआ, और अन्य २ बीमारियाँ दाँत जमने के कारण नहीं होतीं वरन् इसका दूसरा ही कारण है। पर मेरे सब परिश्रम निष्फल हुए। दाँत जमना तो शरीर का स्वाभाविक लक्षण है और यदि इसमें कहीं छेड़ छाड़ हुआ तो बच्चे को व्यर्थ कष्ट सहना पड़ता है।

मैं सोचता हूँ और मेरा यह विश्वास है कि धर्म्मान्ध-विश्वास, अविचार और अज्ञान इत्यादि हमारे बहुत से बच्चों के मरने के बड़े भारी कारण हैं। माता को किस प्रकार अपने बच्चों की रक्षा करना चाहिये इसके विषय में कठिन नियम बनाने से कुछ न होगा, स्त्री-शिक्षा सब स्त्रियों के लिये आवश्यक शिक्षा ही इसका एकमात्र उपाय है। शिक्षा ही से अन्ध विश्वास और मूर्ख स्त्रियों से छुटकारा पाना सम्भव है। स्वास्थ्य-सम्बन्धी विषयों पर बोलचाल की भाषा में पुस्तकें लिखी जानी चाहियें, उनमें 'बच्चों का लालन पालन और उनकी शारीरिक एवं प्रधान अवस्था' रहना चाहिये, हर एक गृहस्थी को इन पुस्तकों को मंगाना चाहिये और लड़कियों के स्कूल में इनका प्रचार होना चाहिये। सरकार से भी इस बात पर ध्यान देने के लिये प्रार्थना करनी चाहिये, कि [illegible] जाकर स्वास्थ्य-सम्बन्धी शिक्षा-प्रचार के हेतु प्रधान विभाग खोले।

लेडी सैनिटरी इन्सपेक्टर्स जिनका कर्तव्य भारत की स्त्रियों को स्वच्छ वायु स्वच्छ जल, और स्वच्छ भोजन की उपयोगिता, का ज्ञान कराना, तथा यन्त्रों से दूध पिलाने की अनुपयोगिता और प्लेग में छापा लेने का लाभ, तथा छूत की बीमारी से अलग

रहने का लाभ इत्यादि विषयों का निपढ़ स्त्रियों को ज्ञान कराना है, उन्हीं के द्वारा स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा का प्रचार कराना चाहिये। वाल्यविवाह भरसक रोकना चाहिये और कमज़ोर अथवा बूढ़ों की शादी रोकनी चाहिये। केवल उन्हीं स्त्रियों को जो बच्चे जनने का विषय भलीभाँति जानती हों और बच्चे को स्नान कराना, धोना, साफ़ रखना इत्यादि जानती हों उन्हीं स्त्रियों को प्रसूत घर का भार सौंपना चाहिये और योग्य डाक्टर, वैद्य तथा हकीमों की अनुमति अनुसार प्रसूतघर की स्थिति ठीक करनी चाहिये। यह प्रत्येक परिवार के मुखिये का कर्त्तव्य है कि छूत की बीमारी उठतेही वह उचित प्रबन्ध करे। कलकत्ते के कारपोरेशन की ओर से ४ लेडी सैनिटरी इन्सपेक्टर नियत की गई हैं, पर इनकी संख्या इतने बड़े नगर के लिए कुछ भी नहीं है। अच्छे दूध के जुटाने का बन्दोबस्त करना चाहिये और यह तभी सम्भव है कि जब हमारे यहाँ भी अन्यान्य देशों की तरह अच्छे पशुओं की सेवा तथा रक्षा हो। शोक की बात है कि कलकत्ते ऐसे नगर में जो बंगाल की तिजारत का केन्द्र है, दूध का इस प्रकार अकाल है कि टीन में बन्द किया हुआ दूध से लोग काम चलाते हैं !

यदि हम लोग उचित नियमों का पालन करेंगे तो अवश्य ही बच्चों की अकाल मृत्यु संख्या बिल्कुल घट जा सकती है।

अखौरी कृष्णप्रकाश सिंह।

—:*:—

ऋण और उससे उद्धार।

सब लोग सपरिवार सुख से जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा रखते हैं। यह आकांक्षा स्वाभाविक है, और यदि प्रबन्ध बुरा न हो तो प्रायः सब को सुख मिल सकता है। पर दुर्भाग्य से इस देश में सुख का पूर्ण अभाव है। कितने लोग जवानी से लेकर मरते दम तक दुःख और चिन्ता में ज़िन्दगी बिताते हैं और यही हालत अपनी सन्तान के लिये भी छोड़ जाते हैं। दुःख के अनेक कारण हो सकते हैं, पर एक प्रधान कारण जो सर्वव्यापक सा बोध होता है वह कर्ज़ लेना है।

दूरदर्शिता अर्थात् भविष्यत् का विचार कर तदनुसार आचरण करना जंगली और सभ्य जातियों के भेद का एक प्रबल चिन्ह है। मूर्ख केवल आज की परवाह करता है। पर आज उसे खूब खाना मिल जा सकता है लेकिन कल वह भूखों मर सकता है। इसी प्रकार बहुत लोग जो कुछ कमाते हैं सब फौरन् ख़र्च कर डालते हैं और जब कभी कोई रोग या असाधारण खर्च का अवसर उपस्थित होता है तो सिवा कर्ज़ लेने के और दूसरा कोई उपाय वे अवलम्बन नहीं कर सकते। बुद्धिमान् कुछ धन बचा रखता है, जिसे जरूरत पड़ने पर खर्च करता है और इस तरह बहुत सूद देने से अपने को बचा लेता है।

ऋण के कारण।

ऋण लेने की आदत भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से ही चली आती है। ऋग्वेद में वरुण देवता की स्तुति की गई

है कि जिसमें ऋण से निवृत्ति हो। आज तक कर्ज़ लेने की आदत देश के प्रत्येक भाग में क्या मूर्ख और क्या विद्वान् सब में पाई जाती है।

बाप के मर जाने से, जिस पर कि घर का समस्त भार अवलम्बित था अथवा कठिन दुर्भिक्ष पड़ने से, मनुष्य को मजबूरन कर्ज़ लेना पड़ सकता है। संसार के सब स्थानों में आमद से ज्यादा ख़र्च करना, जमानत, काहिलपन, जुआ आदि ऋणी बना डालते है। भारतवर्ष में मूर्खता की दो रिवाजों के कारण अधिकांश ऋण लेना पड़ता है।

१—विवाह और मृत्यु के अवसर पर बेठिकाना ख़र्च।

यद्यपि हिन्दू जाति साधारणतः किफ़ायत से ही चलती है पर किसी २ अवसर पर यह धन की धारा बहा देती है। कोई कोई आदमी अपने कई वर्षों की कमाई शादी मे ख़र्च कर डालते हैं और अधिकांश लोगों को कर्ज ही लेना पड़ता है। दरिद्र जन बहुधा आध आने रुपया माहवारी सूद भरा करते हैं। पहले तो गहना ही बन्धक रखते है, कभी २ गाय गोरू और पृथ्वी भी बन्धक धर दी जाती है अन्त में वह बिचारा ऋण देनेवाले का गुलाम बन जाता है। इस सत्यानाशी विवाह के ख़र्च से बचने के लिये कोई २ क्षत्रिय, राजपूत अपनी नवजात कन्याओं को मार डालते थे।

२—बंक में रुपया जमा करने के बदले जेवर बनाकर रखना।

सन् १८० ईस्वी से लेकर आज तक करीब ५०० करोड़ मूल्य के चाँदी और सोना भारत वर्ष में लाये गये हैं। ५ लाख सुनार सोना और चाँदी को भूषण में परिणत करने के लिये

सम्पूर्ण भारतवर्ष में दूकान खोले बैठे हैं। यदि मान लिया जाय कि प्रत्येक सुनार माहवारी ६ रुपया पैदा करता है तो इस हिसाब से सालाना खर्च उनके देने में ३६० लाख रुपये का है। भूषणों से किसी प्रकार की वृद्धि नहीं देखी जाती। और इस्तेमाल में धीरे २ बहुत कुछ घिस जाते हैं। हर साल बहुतेरे बालक और स्त्रियाँ गहनों ही के कारण मारी जाती हैं। उनकी जान मुफ्त में चली जाती है।

मान लीजिये कि एक आदमी केवल जेवर बना बना कर ढेर लगाये जाता हो। इसमें उसको कोई यथार्थ लाभ नहीं पहुँचता और जब उसे रुपये की जरूरत होती है तो कर्ज लेने की नौबत पड़ती है। दूसरा आदमी डाकखाने में अपना बचा हुआ धन जमा करता है। इस पर उसको सूद मिलता है और जब जरूरत हुई रुपया निकाल लेता है। सेविंग्स बंक में जो सूद उसको मिलता था वह अब नहीं मिलता लेकिन सूदखोरों को कुछ भी देना उसको नहीं पड़ेगा। इस देश में कम से कम २०० करोड़ रुपये जेवरों में फँसे हुए हैं।

१२ रुपये सैकड़े सूद के हिसाब से उतने रुपये का सालाना २४ करोड़ रुपए सूद हुआ, जो सरकारी जमीन की कुल मालगुजारी के बराबर है।

कैसी अच्छी बात होती अगर सोने चाँदी के गहने, जिन से कुछ नफा नहीं पहुँचता, रुपयों में पुनः परिणत कर दिये जाते। उससे ऋणोद्धार होता और मवेशी वगैरह खरीदे जाते और व्यापार में परमोन्नति होती। सचमुच ऐसा होने से एक बार भारत का मन्द भाग्य फिर कुछ चमक उठता।

ऋण से हानियाँ।

ऋण लेते रहने से जो विषम हानियाँ उपस्थित हुआ

करती है, उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है।

(१) धन का नाश—भारतवर्ष में लगभग तीन लाख महाजन वर्तमान हैं। इनके सिवा कितने ही लोग खानगी तौर पर महाजनी का व्यवहार किया करते हैं। इन लोगों को जो धन सूद में दिया जाता है उसकी संख्या बहुत ही बड़ी है। एक आदमी जिसपर ५० रुपए कर्ज है, माहवारी ३ रुपया २ आने के हिसाब से ३ वर्ष तक सूद भरता है। तो इस बीच में वह १०० रुपये से भी अधिक सूद दे डालता है पर उसका ५० रुपये का क़र्ज़ ज्यों का त्यों बना रहता है। सिर्फ इतना ही नुकसान नहीं है। पूंजी पास में नहीं रहने से किसी तौर की तिजारत वह नहीं कर सकता, जिसमें उसको भारी लाभ की भी सम्भावना हो। इस हालत में दूकानदार चीजों पर ज्यादा दर चढ़ा देता है, जो बात अगर नकद रुपया दिया जाता तो हर्गिज होने न पाती।

(२) अपमान—कर्जदार को अपने महाजन से मुंह छिपाना पड़ता है और महाजन कर्ज अदा नहीं होने की वजह उसको कड़ी कड़ी बातें और गालियाँ सुनाया करता है। कभी कभी कर्ज वसूल करनेवाले के डर से उसको अपने को लुकाना पड़ता है और इस ख्याल से कि जिसमें पकड़ा न जाय उसे घर से भागना पड़ता है। अपनी और दूसरों की नजरों में वह तुच्छ हो जाता है। इस दुःख से बचने के लिये जन्मभर वह कमीनेपन के उपाय और तदबीर करता रहता है, और कभी कभी कारागार में ही उसका जीवान्त हो जाता है।

(३) मिथ्याभाषण—जो आदमी कर्ज में फँसा है उसके लिये सत्यवादी होना एक कठिन बात है। किसी एक से जहाँ तक बन सका रुपया कर्ज लेकर दूसरे महाजन का कुछ रुपया

चुका देता है और मन में समझता है कि एक हिसाब से 'कर्ज़' वसूल हो गया। एक का रुपया बाकी ही है और दूसरे से कर्ज लेने के वक्त कहता है कि मुझे कुछ भी देना नहीं है। कर्ज देनेवाले से वह कहता है कि फलाने दिन में सूद दे डालूँगा और फलाने दिन मूल चुका दूँगा, पर जब वह दिन आता है तो कुछ भी नहीं अदा करता। यह झूठी प्रतिज्ञा बीसों बार की जाती है और बराबर असत्य होती है। किसी ने सच कहा है कि (Lying rides on debt's back) 'कर्ज की पीठ पर झूठापन सवार रहता है'।

(४) जन्मभर दास होकर रहना—किसी विद्वान् ने ठीक कहा है कि (The borrower is servant to the lender) 'कर्ज लेनेवाला कर्ज़ देनेवाले का दास है'। हिन्दू लोग इतने असावधान होते हैं और सूद की दर इतनी बेशी है कि अगर कोई आदमी महाजन के फन्दे में फँस गया तो फिर उसका छुटना कठिन है। महाजन को उसका छुटकारा पाना मंजूर नहीं। वह चाहता है कि कर्जदार उसी के हित के लिये घसता मरता रहे। अपनी रैयत का गल्ला वह अपने ही माल के हिसाब से ले लेता है और उस बिचारे को केवल इतना ही छोड़ देता है कि जिससे भूखों मर न जाय। अकसर देखा जाता है कि कर्ज कई पीढ़ियों तक लगातार चला जाता है।

(५) बेईमानी—क्लर्क वगैरह को अकसर मालिक के रुपये पैसे सिपुर्द किये जाते हैं और फ़ौरन् हिसाब समझाने की जरूरत नहीं पड़ती। शाहखर्च और फुजूलख़र्च आदमी, अक्सर लालच में पड़कर उसमें से कुछ रुपया लेकर अपने प्रयोजन में खर्च कर डालते हैं। कभी कभी लोग जाल भी बनाया करते हैं। इस देश के प्रत्येक बड़े कारागार में कुछ ऐसे पढ़े

लिखे हुए लोग ज़रूर हैं जो पहले अच्छी हालत में थे, पर अब उन्होंने अपने महाजनों की सख्ती से तंग आकर बेईमानी की राह इख्तियार कर ली थी।

(६) घर का दुःख—कर्जदार के घर के लोग उसके कर्ज़ से उसी तौर दुःखी रहते हैं जैसे वह स्वयं रहता है वह उनकी पूरी रक्षा नहीं कर सकता और उन्हें पेट का दुःख सहना पड़ता है। वे लोग महाजन के तथा आगामी अभाव के डर से सदा संदिग्ध हृदय रहा करते हैं। कभी कभी ऐसा हो जाता है कि कर्जदार कर्ज़ देने से बिलकुल लाचार हो जाता है और तब उसकी सब चीजें बेंच दी जाती हैं और उसके बाल-बच्चे घर से बाहर कर दिये जाते हैं। जब कभी वह किसी सूरत से इस लायक़ भी हुआ कि कर्ज अदा कर सके तो उसके मरने के बाद उसकी स्त्री और बाल बच्चे संसार में दीन और दरिद्र बनकर जीवन व्यतीत करते है।

(७) *मानसिक और धार्म्मिक हानि*—कर्ज़दार अपने कर्ज़ से इस प्रकार चूर रहता है कि न तो उसको ईश्वर का कुछ ख्याल रहता है और न किसी मनुष्य का। और धार्म्मिक उन्नति करने से तो हर तरह वह रुक जाता है। कोई शुभ विचार यदि कभी उसके मन में आया भी तो वह शोक और चिन्ता के कारण सिद्ध और सफल नही होने पाता। यह ऊपर दिखलाया जा चुका है कि कर्जदार बेईमानी करने की ओर भी कमर बाँधे रहता है। कभी कभी शोक विचारों के परिणाम से बचने के लिये शराब की शरण भी ली जाती है। नतीजा यह होता है कि कर्जदार शराबखोर होकर मरता है; जिससे लोक परलोक दोनों उसके नष्ट होते हैं।

इस देश में बाज ही लोग ऐसे हैं जो इस बात को सम-

झते हैं कि कर्ज़ लेना सचमुच बुरा है। और लोगों को इसका ध्यान भी नहीं रहता कि बेईमानी कर रहे हैं और दूसरों के गले पर कठिन और असह्य नाम की छुरी चला रहे हैं।

ऋण से कैसे उद्धार हो सकता है।

ऋणमुक्त होने की चिन्ता सैकड़ों वर्ष तक क्यों न रहे, पर एक पैसा अदा करना कठिन ही हो जाता है। जैसा कि एक अंगरेज़ कवि ने कहा है-

"A hundred years of regret pay not a farthing of debt"

पहाड़ पर से एक बड़े भारी चट्टान को नीचे गिरा देना आसान है किन्तु उसको ऊपर चढ़ाना एक दुष्कर कार्य्य है। इसी प्रकार कर्ज़ ले लेना आसान है पर उससे छुटकारा पाना महा कठिन है। तो भी किसी न किसी उपाय से सम्भव हो सकता है। और तदनुसार के करने में जो कष्ट उठाना पड़ेगा उसका फल यथेष्ट हो जायगा। कर्ज़ देनेवाला कटिबद्ध होकर और ईश्वर पर पूर्ण भरोसा रख कर इस बात की शपथ कर ले कि जहाँ तक उससे बन सकेगा अपने ऋण का भारी बोझ उतारने के लिये वह तन मन से यत्न करेगा। अगर वाचक वृन्द ऐसा करना समुचित समझते हैं तो उनको चाहिये कि निम्नलिखित नियमों को हृदय में धारण कर अपना कल्याण साधन करें।

(१) अपनी आमदनी का ठीक हिसाब करना और कर्ज़ की फिहरिस्त बनाना।

इसमें ख्याल रखना चाहिये कि आमदनी का हिसाब ठीक ठीक और भरा पूरा उल्लेखित रहे। अगर महाजन बहुत हैं,

जिनका रुपया अदा करना है तो विचारना चाहिये कि किस का दावा अधिक तंग करता है। और एक बही में उन सब को लिख लेना चाहिये।

(२) ख़र्चका हिसाब इस तरह बांध रखना कि हर महीने सिर्फ़ सूद ही नहीं अदा हो बल्कि मूल का भी कुछ अंश वसूल होता रहे।

इस बात के करने में शाहखर्च आदमी को भारी मानसिक युद्ध करना होगा और घोर संकट अनुभूत होगा, पर सफलता का केवल यही एक मार्ग है। जो लोग आमदनी से बाहर खर्च करते हैं उनको अन्त में मजबूर हो किफायत से चलना ही पडेगा। यदि वे ठीक समय पर चेत जायँ और कुछ आत्म-त्याग करने लगें तो पीछे बहुत कम कष्ट उठाना पड़ेगा।

केवल सूद ही देना काफी नहीं है। कर्ज ज्यों का त्यों बना रहता है, किन्तु मूल के बराबर ही कई बार सूद दिया जाता है। और यदि मूलका थोडा अंश बराबर वसूल किया जाय तो धीरे २ बिलकुल कर्ज अदा हो जायगा।

मान लिया जाय कि किसी को माहवारी ३० रुपया है लेकिन उनपर २०० रुपया कर्ज है जिसपर १२ रुपये सैकडा उसे सूद देना पड़ता है, अर्थात् हर महीने दो रुपया सूद उसको देना होता है। तो उस आदमी को चाहिये कि मुस्तैद होकर २६ रुपया पर ही अपना कुल काम करे और बराबर हर महीने ४ रुपया निकाल कर देता चला जाय जब तक कि कर्ज वसूल न हो जाय। इस विषय का माहवारी हिसाब जोडने में कुछ दिक्कत होगी, इसलिये यहाँ पर सालाना हिसाब रुपयों में दे दिया जाता है:—

	अदा सूद	किया, मूर	बाकी
प्रथम वर्ष के अन्त में	२४	२४	१७६
द्वितीय „ „	२१	२७	१४९
तृतीय „ „	१८	३०	११९
चतुर्थ „ „	१४	३४	८५
पंचम „ „	१०	३८	४७
षष्ठ „ „	५	४३	४

इस हिसाब में देखा जाता है कि छः वर्ष में सब कर्ज दूर हो जाता है और सूद ९२ रुपये तक ही अदा करना पड़ता है। यदि कर्जदार केवल सूद ही दिया करेगा तो ६ वर्ष में इसकी संख्या १४४ रुपये तक पहुँच जाती और कर्ज ज्यों का त्यों रहता। इसलिये यह अत्यन्तावश्यक है कि मूल का अश भी थोडा २ बराबर वसूल होता रहे। अगर वह शख्श ६ रुपये कर्ज अदा करने में सर्फ़ करे तो बारही वर्ष के भीतर वह अदा हो आयगा और उसको करीब ५८ रुपये सूद देना पड़ेगा।

(३) जेवरों को बन्धक रखने और उन पर सूद होने के बदले यदि संभव हो तो उन्हें बेच डालना उचित है-यह बात ऊपर दिखलाई जा चुकी है कि जेवरों के चलते कितने करोड़ रुपये नष्ट हो जाते हैं। किसी मूर्ख औरत के लिये गहना बेचने के विचार में सहमत होना मानों कलेजे का खून बहाना है। लेकिन अगर शौहर समझा दे कि उनपर कर्ज लेना कैसी बेवकूफ़ी है और यदि कर्ज नहीं रहेगा तो दोनों प्राणी अधिक सुख और आनन्द से रह सकेंगे तो करीना है कि बाज बाज औरतें जो अक़्लमन्द और समझदार हैं इस बात पर राजी हो जायँगी।

(४) सोचना चाहिये कि आमदनी किस तरह उत्तम

प्रकार से ख़र्च की जा सकता है-सभी सुशासित राज्यों में गजट तैयार होता है जिसका तात्पर्य्य आय और व्यय के वार्षिक हिसाब से है। ख़र्च के मुख्य मुख्य विषय मकान का किराया म्युनिसिपेलटी का टिकस, खाना और घर में इस्तेमाल को आने की चीजें, कपड़ा, शिक्षा दान, और रिजर्व फण्ड आदि हुआ करते है। हर विषय पर उचित ध्यान देकर उसके लिये उचित द्रव्य निकाल देना चाहिये।

(५) अपने खर्च का हिसाब रखना—इस बारे में लौक साहब कहते है कि किसी आदमी को यदि अपनी आमदनी के भीतर रहना हो तो इससे बढ़कर कोई उपाय नहीं है कि वह अपने सम्पूर्ण कार्यों की स्थिति का पूरा और ठिकाने का हिसाब अपनी आँखों के सामने सदा मौजूद रक्खे। क्या ख़र्च होता है इसका ख्याल हर रोज ज़रूर करना चाहिये। बहुत से गरीब आदमी ऐसा समझते हैं कि उनके लिये कोई ज़रूरत नहीं है कि वे अपनी आमदनी और खर्च का ठीक ठीक हिसाब रक्खा करें। पर यह भारी भूल है। जो जितना ही गरीब है उसको उतनाही ध्यान प्रत्येक पैसे पर जो कि प्राप्त होता है होना चाहिये।

(६) जो कुछ खरीदना हो दाम देकर खरीदना चाहिये जब किसी शख्सको फौरन नकद रुपये या पैसे देने पड़ते हैं तो वह दोबारा सोचने लग जाता है कि उस चीज़ की जरूरत है वा नहीं। नकद कीमत देने से तुम उन दूकानों में आ सकते हो जहाँ चीजें निहायत अच्छी और सस्ती बिकती हैं और कभी कभी तुम्हे कमीशन भी मिल सकता है।

(७) दुकान और नीलाम की जगहों में आना बन्द करना चाहिये—लोग जब नीलाम की जगहों में पहुँचते हैं तो

उन्हें उन चीजों के खरीदने का लालच ही आता है जिनकी मुतलक़ ज़रूरत नहीं है। दुकान में अकसर जाने आते रहने से फजूल चीजों के खरीदने का इत्तफाक हो जाता है। ऐसी हालत में जब कुछ खरीदने की ख्वाहिश हो तो यह बात मत सोचो कि "खरीद सकते है या नहीं" बल्कि यह सोचो कि "उसके बगैर काम चल सकता है कि नहीं"।

(८) शराब वगैरह नशीली चीजों और तम्बाकू आदि में पैसा खर्च मत करो। पुराने वैदिक लोगों में एक कहावत थी कि जल ही सर्वोत्तम है। कई शताब्दियों तक भारतवर्ष के निवासी केवल [illegible] २ [illegible] पर, [illegible] के साथ रहते रहे। सो उचित है कि हिन्दुस्तान इस विषय में अपने पूर्व पुरुषों का आदर्श ग्रहण करें। तम्बाकू पीने का शौक मत करो और सोचो कि उसका अभाव तुम कभी नहीं अनुभव करते हो। अफीम भी तम्बाकू [illegible] लोगों के लिये हानिकारक है। [illegible] शराब वगैरह में भी खतरनाक है। इसलिये इनको किसी तरह इसका इस्तेमाल नहीं करना चाहिये।

(९) मना करना सीखो। जब कभी किसी ऐसी चीज के खरीदने की ख्वाहिश हो जो तुम्हारी आमदनी से बाहर है तो उसे मन ही मन इन्कार कर बैठो। जब तुम कर्ज अदा कर रहे हो तो तुमको यह लालच हो सकता है कि एक महीना कर्ज न दें पर इसको भी दृढ़ होकर जी में इन्कार करो। तुम्हारी स्त्री या तुम्हारे बालबच्चे कपड़े वगैरह ऐसी वस्तुएँ खरीदने के लिए आर्जू कर सकते हैं जो तुम्हारी आमदनी के बाहर हैं, पर हर्गिज कबूल मत करो। जब किसी और की जाहिरदारी दिखाने की ख्वाहिश हो तो भी रुपया खर्च करने में नाक सुकड़ा

लो। जब कभी कुकर्म करने की ओर मन दौड़ जाय तो खूब कड़े होकर अपनी तबियत को खींच लो। जब जब यह इरादा हो कि आप काहिल से लेटे पड़े रहें, भोगविलास में निमग्न हों, मूर्खता का कार्य्य कर लें, बुरी रिवाजों को मानकर तदनुकूल काम करें तो इन सब से बचने का केवल यही एक उपाय है कि गुस्से में आकर साफ़ इन्कार करो। ऐसा करने में पहले तो बड़ी कठिनता मालूम पड़ेगी पर जैसे २ अभ्यास होता जायगा, शक्ति बढ़ती जायगी।

(१०) परिश्रमी बनो—जिस काम को करोगे बिना परिश्रमी हुए सफलता नहीं होगी। सुलेमान (Solomon) ने कहा है कि मिहनती पुरुष का हाथ ही उसे अमीर बनाता है। उनकी आज्ञा है कि सोने में रुचि मत दो नहीं तो दरिद्र हो जाओगे।

(११) डाकखाना बैंक में रुपया जमा करना—इस देश में बहुतेरे लोग किफायत का ख्याल नहीं करते, जो आया सभी खर्च कर डालते हैं। विवाह पुत्रोत्पत्ति आदि जान कर भी उसका प्रबन्ध पहले से नहीं कर रखते, जिस वक्त बहुत सी मांगें को आ जाती हो सकती हैं। और जब खर्च की मद बढ़ जाता है तो कर्ज ढूंढते हैं और सूद भरते हैं। ऐसे लोग कम नहीं हैं जो मुशाहरा मिलते ही सब खर्च कर डालते हैं, और एक रुपया भी किसी दूसरे काम के लिये नहीं रख छोड़ते। यह सब बातें सेविंग्स बैंक में रुपया जमा रखने से दूर हो जा सकती हैं। इस बारे में कायदा और कानून की किताब हर डाकखाने से मिल सकती है।

(१२) ईश्वर से सहायता माँगो—यथार्थ सुधार के लिये धार्मिक परिवर्त्तन अवश्य चाहिये। कर्ज की बुराइयों को

ख्याल से यद्यपि कलेजे में भारी चोट सी प्रतीत होती हो पर बहुतेरे फ़जूल खर्च लोग ऋणमुक्त हो जाने पर भी तुरन्त उसी गड़हे में फिर जा गिरते हैं। ऐसे शख्स को कर्ज देना फजूल से भी बदतर है। केवल विद्या ही इसमें सहायता नहीं कर सकती है। बड़े बड़े विद्वान् भी कहीं कहीं वैसे ही व्यर्थ-व्ययी होते हैं, जैसे महामूर्ख रैयत। मानसिक उन्नति का प्रभाव धार्म्मिक आचरण पर नहीं पड़ता।

ललक और लालच को रोकने में अपनी शक्ति पर भरोसा न कर प्रतिदिन परमात्मा से विनय करो कि वह तुम्हारी रक्षा और कल्याण करे, पर ऐसा करते समय पूर्व किये हुए अपने समस्त कुकर्मों का शान्त भाव से उसे जगदीश्वर के समीप स्वीकार करो और उन पर पश्चात्ताप करो। परमेश्वर की सहायता पर भरोसा करके पूर्व्वोक्त नियम और नसीहतों की पूर्ण दृष्टि और ध्यान पूर्व्वक अवलम्बन करने से बहुत आशा है कि अधिकांश ऋणी जन धीरे धीरे ऋणमुक्त हो जायँगे।

ऋणरहित होने से लाभ।

अभिप्राय नहीं है कि लोग रुपया इकट्ठा करते हुए चले जायँ और एक दूसरे का धनसंचयय सुख देख कर आपस में डाह रक्खें। लालची सुवर्ण को देवमूर्त्तितुल्य मानता और उसके निकट सिर झुकाता है। जो कंजूस है उसको कभी सन्तोष नहीं। वह केवल रुपये जमा करने का हाल जानता है और धड़ा धड़ जमा करता हुआ चला जाता है। खर्च का नाम तक कभी नहीं लेता।

अन्त में उसका धन दूसरों के हाथ लगता है जो उनके

चैन और मौज में उड़ जाता है। मेरा तात्पर्य्य कुछ दूसरा ही है। ऋण से बचे रहने से क्या क्या लाभ मनुष्य को पहुँ-चते हैं उनका कुछ वर्णन नीचे दिया जाता है:—

(१) रुपया बचना—यह दिखलाया जा चुका है कि महाजन और साहूकारों के यहाँ मनुष्यों को कठिन परिश्रम के कितने रुपये चले जाते हैं। अतएव जो आदमी ऋणी नहीं है वह इससे बचता है।

(२) रुपये पैसे की चिन्ता से निवृत्ति—जो शख्स कर्ज में पड़ा है उसको अक्सर रात को नींद नहीं आती और न चैन मिलता है। बराबर इसी सोच में डूबा रहता है कि कर्ज किस तरह अदा हो। जिसको कुछ देना नहीं है उसके आराम में इस तौर की बाधा नहीं पड़ती।

(३) सब सहकारियों में आदर—कर्ज देनेवाला कर्जदार को कड़ी नजरों से देखता है। कर्जदार को उससे कितनी ही बेइज्जती उठानी पड़ती है। पर जिसको कुछ देना नहीं है उस आदमी को हर शख्श हँसते हुए चेहरे से सम्मान प्रदान करता है।

(४) सचाई और ईमानदारी का बढना, कर्जदार बराबर वादा करता है और वह झूठ होता है। जिस वस्तु के दाम देने में वह असमर्थ है उसको बेईमानी के जरिये ले लेता है। इस प्रकार झूठ और छलकी वृद्धि होती है जिससे भारी भारी हानियाँ पहुँचा करती है।

(५) दीन और दरिद्रों की सहायता देने और अच्छे फलदायक कार्य्यों के कर सकने की शक्ति का होना—दूसरों का आनन्दवर्द्धन करना जीवन का एक प्रधान सुख है। जो

वस्तु हमारी नहीं है उसको किसी दूसरे को दे डालने का हमें कोई अधिकार नहीं है पहले इसके कि हम दयालु हों हमको न्यायपरायण होना अवश्य है। चूंकि उस आदमी को जिसे कर्ज नहीं है सूद में रुपया फेकना नहीं पड़ता, इस लिए वह अधिक रुपया जमा कर यथेष्ट कामों में खर्च कर सकता है।

(६) घरमें सुख और सन्तान के लिये एक उत्तम आदर्श– कर्ज़दार के घरमे जो दुःख उपस्थित होता है उसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। घर में सुख का निवास नहीं। अपरिमित व्ययी बहुधा वैसे ही सन्तान उत्पन्न करते है। जो आदमी रुपये पैसे की बात में चतुर और चालाक है उसको उसका फल केवल वर्त्तमान समय मे ही नहीं मिलता वह भावी वंशजों के लिये भी सुखजनक हो सकता है।

ऋण के बारे में डाक्टर सैमवेल जानसन की सम्मति।

ऐसा विचार करने का अभ्यास न लगाओ कि ऋण से किञ्चित क्लेश ही होता है। तुमको शीघ्र पता लग जायगा कि यह एक भारी विपद है। दरिद्रता शुभ कर्म्मों के करने में इस कदर विघ्न डालती और शुभाकाङ्क्षाओं का संहार करती है कि जहाँ तक बने इसके रोकने का उपाय करना चाहिये। निर्धनता के कारण स्वाभाविक और धार्मिक अनौचित्यों के हटाने मे प्रबल कठिनता होती है इस लिये पहले इसी बात पर पूर्ण दृष्टि दो कि किसी से कुछ कर्ज लेना न पडे। दृढ़ होकर जी में ठान लो कि दरिद्र नहीं होगे। जो कुछ तुम कमाओ उसी में इन्तजाम करो और जहाँतक बने कम खर्च किया करो। मानव सुख का ह्रास करने वाला केवल शत्रु दरिद्रही है। इसके द्वारा स्वतन्त्रता का नाश होता है और उत्तम गुणों का आचरण कभी कभी कठिन और अधिकतर

असंभव हो जाता है। कम ख़र्च करने से मनुष्य को केवल शान्ति ही नहीं प्राप्त होती वरन् दूसरों को सुख और शान्ति प्रदान करने का भी सुन्दर अवसर और सौभाग्य प्राप्त होता है। कोई भी आदमी जो खुद मुहताज है दूसरे की मदद नहीं कर सकता। दूसरे को देने के पहले अपने पास काफी धन रहना चाहिये। ऋण से आत्मसम्मान में बहुत हानि पहुँचती है, इसकी वजह से सौदागरों और उनके नौकरों की मिहरबानी ताकनी पड़ती है और कितने ही प्रकार से यह उसको दास बना डालता है। क्योंकि तब वह अपने को अपना मालिक नहीं कह सकता और न संसार की ओर दिलेरी के साथ ताक सकता है। जो ऋणी है उसके लिये सत्यवादी होना दुष्कर है। आमद के अन्दर खर्च करने की आदत मानों ईमानदारी की जड़ है। क्योंकि जो आदमी ईमानदारी के साथ अपनी आमदनी के भीतर ही रहने का प्रबन्ध नहीं कर सकता वह निस्सन्देह बेईमानी से दूसरों की कमाई पर जीवन धारणकरता है।

मेरी समझ में धन और सुख का सर्व्वोत्तम उपाय अल्पव्यय अर्थात् किफायत से खर्च करना ही है। किफायत मानो अकल की बेटी, परहेज की बहन और आजादी की माँ है।

महेशचन्द्रप्रसाद।

—:*:—

मृत्यु कुछ नहीं है। यह जो मृत्यु सी दिखाई देती है—परिवर्तन है।

—लौंग फ़ैलो।

—:*:—

भूत और भविष्य ।

र्तमान काल से लाभ उठाने की, सदा कामना रखनी चाहिये। भूतकाल को भी आदर की दृष्टि से देखना चाहिये।

मन-मोदक खाना और भविष्य में लाभ ही लाभ के स्वप्न देखना भी मूर्खता है। नीतिशास्त्र के किसी भी सिद्धान्त के अनुसार यह बात सत्य नहीं जान पडती है कि भूतकाल सर्वथैव निष्प्रयोजनीय क्यों मान लिया जावे? और भविष्य में लाभ ही लाभ क्यों ग्रहण किये जावें? इसके विपरीत यह मानने में कुछ भी अडचन नहीं दिखलाई पड़ती है कि भविष्य के समान भूत भी सत्यता और यथार्थतासे पूर्ण है। और दोनों ही का मनुष्य जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो व्यतीत हो गया उससे अब क्या लाभ? उसका उपयोग ही क्या है इस प्रकार की दलीलें निःसार हैं।

यदि भूत के विषय में यह कहा जावे, कि वह तो व्यतीत हो गया है, इसकारण उसके द्वारा भलाई बुराई की कुछ भी आशङ्का नहीं है, तो भविष्य के विषय में हम उससे भी बढ़-कर कहने को तैयार हैं। उसका तो होना तक निश्चित नहीं है। जिसका अस्तित्व ही नहीं है, उससे आशा कैसी।

यदि कोई कहे वास्तविक वस्तु वर्त्तमान है, इस कारण उसके प्रत्येक क्षण से हमें लाभ उठाना चाहिये, तो उसका कथन सर्वांश में सत्य मानना होगा, परन्तु भूत और भविष्य के विषय में शायद आप यह बात मानने को तइयार न हों। अतएव यदि 'गत' होने के कारण 'भूत' निष्प्रयोजनीय है, तो दूसरा भी यथार्थ में अभी कुछ न होने के कारण किसी काम

का नहीं है। भूत और भविष्य में भविष्य विशेष उपयोगी है, ऐसा मानने के लिये कोई उचित दलील दृष्टि-गत नहीं होती है। दोनों ही को हम मन और विचार की दुनियाँ में पाते हैं, इस कारण हम उन्हें कुछ न मानें तो क्या आपत्ति हो सकतीहै? मन, भूत की अपेक्षा भविष्य के चिन्तन में विशेष संलग्न रहता है, फिर भी भूत की अपेक्षा भविष्य का अस्तित्व क्षीणतर है। जिस भविष्य की हमें इतनी आशा है, जिस पर हम इतना भरोसा रखते हैं, सम्भव है कि उसका कभी आविर्भाव ही न हो, इस प्रकार उसे वास्तविक वस्तु कहलाने का कभी सौभाग्य ही न प्राप्त हो सके। ठीक इसके विपरीत 'भूत' को ऐसी कोई शङ्का नहीं है। इस समय न सही तो किसी समय उसका अस्तित्व था और उस पर सत्यता की छाप लग चुकी है, वह न सही, परन्तु यह भावना कि "वह था" अब भी वर्त्तमान है। इस प्रकार वह शंसयास्पद सम्भावना से बहुत उच्चस्थान पर स्थिर है।

यह सब होते हुए भी हम भविष्य के महत्व की अवहेलना नहीं कर सकते हैं। यद्यपि भविष्य इस समय कुछ भी नहीं है, फिर भी 'वह होगा' यह बात बहुत ही महत्वपूर्ण है, और इसी कारण लोगों का उस में प्रगाढानुराग है। इन विचारों की भावना हमारे चित्त में अभी से वर्त्तनमान है कि कभी उसको वास्तविक वस्तु कहलाने का सौभाग्य अवश्य प्राप्त होने को है।

जिन कारणों से हम भविष्य के महत्व की अवहेलना नहीं कर सके, ठीक वही कारण भूत के महत्व को भी कम नहीं होने देते हैं। यद्यपि भूत इस समय यथार्थ में स्थित नहीं है, यद्यपि उसके प्रति हमारे अनेकानेक अनुराग एवं विचार

विस्मृत हो चले, तो भी उसकी यथार्थता इतनी दृढ़ और निश्चय है कि उसकी वास्तविक दशा का ज्ञान हमारे अन्तःचक्षु को अब भी हो जाया करता है, अतएव भविष्य के समान भूत का भी महत्व है और मनसे उनका अलगाव भी नहीं है। अलगाव हो भी कैसे सकता था, क्योंकि अलगाव होता तो इस समय की वस्तुओं का पहले की वस्तुओं से कोई सम्बन्ध ही न रह जाता।

क्या कोई कह सकता है कि इस कथन में कुछ भी सार नहीं है, कि पहले भी हमारा सुख या दुःखपूर्ण अस्तित्व अवश्य था?

जब हम बड़े आनन्द या शोक से उन बातों का ध्यान करते हैं, जोकि किसी समय हमारी थी तो क्या हम इसे अपने आप को धोखा देना मानें या स्वप्न कथा? या मनमोदक या आलस्य की देखाऊ बातें? या वह झुठाई जिसका संसार की वास्तविक बातों में कहीं पता नहीं चलता है? जब हमारे अन्तःचक्षु के सम्मुख किसी देदीप्यमान सत्यता की समुज्वल प्रतिमा आकर घूमने लगती है तो क्या हम यह कहें कि हम किसी का भी ध्यान नहीं कर रहे हैं? बाल्यावस्था का खेल, कूद सरलताभरीबातें, सब वस्तुओं को आश्चर्य से देखने की आदत क्या इन सब का विचार और स्मरण झूठ होता है? जिन घटनाओं से हमारा सम्बन्ध था, जिनमें हमारा अनुराग था, क्या उनका स्मरण कुछ भी नहीं है? क्या उसको मूल्यवान समझना व्यर्थ है? और नहीं तो क्या उसके स्मरण में हमें असत्यता का भी भय है? जिन आपदाओं को मनुष्य ने झेला है, जिन आनन्दोत्सवों में वह सम्मिलित रहा है, उनका स्मरण कदापि व्यर्थ नहीं है। सत्यता में दृढ़ विश्वास और आनन्दा-

नुभव भूतकाल ही की बदौलत मिलता है। पुरानी बातों के स्मरण में एक अलौकिक आनन्द है, प्रत्यक्ष चित्र और स्वप्न की कौन कहे श्रवण दर्शन का स्मरण भी चित्त को तन्मय कर देता है।

सीस मोर मुकुट लकुट कर पीत पट,
गरे बनमाल परिकर कटि कसी है।
माधुरी हँसनि बिलसनि बड़े बड़े नैन,
कुंडल कपोल गोल तैसी छबि लसी है
चलनि चितौनि चित चोरति प्रवीन बेनी,
बोलनि अमोलनि अजौं लौं वैसी गसी है।
जा दिन ते सजनी बखानी हरि मूरति तैं,
तादिन तैं तैसिही हमारे उर बसी है॥

क्या भूतकाल के अभाव में जिसदिन कहा था, उसके नवीन चुकने पर भी नायिका का अपने प्रेमी नायक का सुना हुआ स्वरूप, स्मरण करके ऐसा आनन्दातिशय प्राप्त होता? भविष्य एक ऐसी भीति के समान है-जिसमें खिड़की या दरवाजा कुछ न होने के कारण यह जानना अत्यन्त कठिन है कि इसके उस ओर क्या है? अथवा उसे शरद ऋतु के उस कुहरे के समान मानिये, जिसके कारण आगे की चीज़ें साफ़ साफ़ बिलकुल नहीं देख पड़ती हैं, पर क्या भूत के विषय में भी आप ऐसा उपालम्भ दे सकते हैं। जो कुछ हो चुका है वह स्पष्ट है, उसकी आभा में और आप के अनुराग में कमी नहीं पडने की है। अच्छा आप ही बतलाइये आप भविष्य की अनिश्चित बातों को सोचा:करते हैं या भूतपूर्व सत्य घट-नाओं को। यदि भविष्य के समान भूत भो अनिश्चित

होता तो खराब से खराब काम करके उसके कारण जो दुःख मिले हैं उनका अनुभव कर चुकने पर भी बाद को मनुष्य को मानसिक दुःख न होता। पश्चात्ताप मानों उठ ही जाता। अतः विचार-क्षेत्र विस्तीर्ण करने में भविष्य की अपेक्षा भूत श्रेष्ठ है; पर ऐसी भी अनेक बातें है, जिनमें भविष्य भूत से श्रेष्ठ है। भूत कामों को देख कर अनेकानेक इच्छायें उठतीं है, परन्तु भविष्य ही के सहारे उनकी पूर्ति के लिये कार्य किया जाता है। भूत में हमें सुख था इस समय हमें दुःख है, ऐसी दशा में आनन्द का स्मरण इस समय हमें दुःखी ही बनावेगा, परन्तु भविष्य की आश्वासनकारिणी वाणी हमारे विचारसागर में एक बार फिर आनन्द की लहर डुला देती है। ऐसीदशा मे भविष्य की श्रेष्ठता निर्विवाद सिद्ध है। हम किसी समय बड़े दु.ख में पडे थे और अब उस दु.ख से हमें छुट्टी मिली है। भविष्य में अभी फिर उस दुःख के पुन मिलने की सम्भावना नहीं देख पडती है परन्तु यदि भविष्य न होता तो क्या हम उस भूतपूर्व दुःख निवृत्ति-जन्य सुख का अनुभव कर सकते! जो धन व्यय हो गया है, उससे अब क्या लाभ? इसी प्रकार जो कुछ हो चुका सो गया गुजरा, परन्तु जो कुछ होने को है, वह उस धन के समान है जो सञ्चित है और जिसके उपयोग की आशामात्र से अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है। जो कुछ हो गया है उसमे अब हमारा वश नहीं है; परन्तु जो कुछ होने को है, उसको उद्योग द्वारा हम भरसक सुधार सकते है। इस बात में भी भविष्य भूत से श्रेष्ठ है। दु ख और चिन्ताएँ तो भूत ही के साथ साथ नष्ट हो जाती हैं, पर कर्त्तव्य-पालन की दृढता हम में भविष्य ही के आग्रह से बढ़ती है। इससे कर्त्तव्य परायणता को भविष्य ही

से उत्तेजना प्राप्त होती। निदान भूत और भविष्य दोनों ही महत्व पूर्ण हैं।

वर्त्तमानकाल का इससे अधिक उपयोग क्या हो सकता है, कि वह भूतकाल के गुणों का गान करके भविष्य में सफलता प्राप्त हो सकेगी, इस निश्चय को दृढ़ करे। वर्तमानकाल कार्य-क्षेत्र है, भूत उपदेष्टा है और भविष्य की आशा उत्तेजना है। भूतकाल विचार वर्धक है और भविष्य आशास्पद है।

प्यारे भारतवासियो, अपने पूर्व गौरव एव अध पतन से उपदेश ग्रहण करो। इस ब्रिटिश सुशासन में भविष्य की आशा पर अपनी दशा सुधारने का उद्योग करो, जब कि भ्रमर, भविष्य में फिर गुलाब फूलेगा इस विचार से सूखे हुए गुलाब वृक्ष को नहीं छोडता है, तब ब्रिटिश सुनीतिरूपी जल से सिञ्चत अर्द्धम्लानभारत वृक्ष का जिसमें अब फिर सौभाग्य-रूपी हरी पत्तियाँ निकल रही हैं, भ्रमररूपी तुम क्यों छोड़ने को तैयार हो। स्मरण रक्खो कि सफलतारूपी पुष्प इसमें अवश्यही फिर लगेगा, जिसमे सुख समृद्धिरूपी मकरन्द को पान किये बिना तुम न रह सकोगे। तुम्हारी तृप्ति अवश्यम्भावी है।

कृष्णविहारी मिश्र।

—:*:—

सब से अच्छा और आवश्यक शिक्षा प्रत्येक मनुष्य के लिये वह है जो वह स्वय अपने आप को देता है।

—गिबन।

—:*:—

युद्ध।

—*—

भगवन्! यह युद्ध क्या है, और क्यों होता है! १२० लाख (एक करोड़ बीस लाख!) सेना यूरोपीय महाभारत में क्यों एकत्र थी! यह १७॥ करोड़ रुपया नित्य युद्ध में क्यों स्वाहा हो रहा था! सिकन्दर, चङ्गेज़, तैमूर, ज़ेरक्सीज, हनीबाल, सीजर, सुलादीन और नेपोलियन आदि ने मिल कर भी ऐसी खून की नदियाँ न बहाई होंगी जैसी इस बीसवीं शताब्दी में बह रही थी! जिस शताब्दी की सभ्यता पर मानवजाति अभिमान करती थी, उसी शताब्दी में सभ्यता का मुकुट धारण करने वालीही जातियाँ ड्डनाट, सबमेराइन, जेपलिन और हवाई जहाज़ द्वारा एक दूसरे का सर्वनाश कर रहा था—संसार मात्र का व्यापार बन्द था, आर्ट, इन्डस्ट्री, साइन्स, कृषि आदि सब रुक गया था! केन्टन (अमरीका में) से केन्टन (चीन में) तक हाहाकार मचा था। सभ्यता का हृदय, तलवार और भाले की नोक, बेधे डालती थी। पृथ्वी डावाँडोल थी। भूमण्डल के प्रत्येक व्यक्ति थर्रा रहे थे। संसार में प्रलय का कुल सामान एकत्र था—बड़े बड़े योद्धा मर रहे थे, विद्वान मर रहे थे, और तिस पर भी युद्ध बंद नहीं हो रहा था। अभी भी, यूरोप युद्ध से मुक्त है ऐसा कोई भी विचारवान कह नहीं सकता। यह सब क्यों है? क्या यह यूरोपीय महायुद्ध, मानव-जाति के विनाश का कारण नहीं हो रहा है!

पर, तौ भी यह कोई नई बात नहीं है। सृष्टि के आरम्भ से ही हमें युद्ध का भी आरम्भ जान पड़ता है। वेद भगवान तक में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की प्रार्थनाएँ अङ्कित हैं।

भारत में आर्य्यों ने आकर अनार्य्य, कोल, भील आदि से युद्ध कर उनका देश छीन, उन्हें जङ्गलों की राह बताई। क्रोधी परशुराम ने अनेकों बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया। मर्य्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को, दुष्ट रावण आदि अनेक दुःखदाई अत्याचारियों का दमन करना पड़ा, पुनः पिता पुत्र (लव, कुश) तक में युद्ध हुआ। भगवान श्रीकृष्ण को महाभारत सा भीषण युद्ध कराना पड़ा, जिसमें भाई को भाई ने, मित्र को मित्र ने, भतीजे को चाचा ने, दादा को नाती ने, गुरु को शिष्य ने मार कर अपने कुटुम्ब और साथ ही साथ देश की जनसंख्या का संहार कर दिया। आज पाँच हजार वर्षों से भारत में निरन्तर खून की नदियाँ बह रहीं हैं, भारत विदेशियों का शिकार बन रहा है। ग्रीक, सीथियन, हून्स, ग़जनी, ग़ोर, अफ़गान, पठान, तुर्क, तातार, मुग़ल, आदि जिसने चाहा भारत का रक्तपान किया। लाखों बेक़सूर क़ैदियों को एक ही बार क़त्ल करके खून की नदियाँ बहाईं, तैमूरलंग, औरंगजेब और नादिरशाह ने भारत को कैसा गारत किया, बताने की आवश्यकता नहीं। दस सहस्त्र विदुषियों को भस्म करने वाली चित्तोर की चिता आज भी भारतवासियों के सम्मुख धाँय २ कर के दहक रही है—इन युद्ध यज्ञ की आहुति पद्मिनी, जवाहिर, तारा, लक्ष्मीबाई और अहल्या आदि आज भी भारत में सच्ची देवियाँ करके पूजी जाती हैं।

भारत ही नहीं? युद्ध से तो भूमण्डल का कोई देश, जाति वा काल खाली नहीं रहा है—यूरोप, अमरीका, एशिया, के जिस देश वा राष्ट्र के इतिहास को उठाइये युद्ध से भरा पड़ा है। प्राचीन काल के लोगों को असभ्य कह कर उनको युद्ध का

वृत्तान्त छोड़ आप अर्वाचीन काल के सभ्य और सुशिक्षित जातियों को देखें, तो ज्ञात होगा कि यह काल भी भयंकर युद्ध से भरा है। अभी थोड़े ही दिनों के भीतर ट्रांसवाल, रूस-जापान, इटली-रूम, रूम-बालकन आदि अनेक युद्ध हो चुके हैं। इस समय जो भीषण युद्ध छिड़ा था, जिसमें सारे संसार की महान् जातियाँ एक दूसरे से भिड़ गई थीं, और जिससे यूरोपीय जनसंख्या का क्षय हो रहा था, उसका कुछ पूछना ही नहीं है।

इस सभ्य और सुशिक्षित समय में संसार मात्र के कल्याण के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि (International treaty) हुई; प्रत्येक देशों में प्रत्येक राज्यों के दूत रहने लगे कि उनकी सलाह से अथवा अन्तर्राष्ट्रीय पंचायत द्वारा झगडे तै कर दिये जायँ। चुनाव द्वारा बडे २ धुरन्धर दूरदर्शी राजनीतज्ञ राज-कर्मचारी नियुक्त किये जाने लगे। राजा प्रजा का द्वेष कम हुआ, मित्रता अधिक हुई। राजाओं ने व्यक्तिगत शासन प्रणाली छोड साधारण-प्रजा की अनुमति से राज्य प्रबन्ध करना आरम्भ किया। धर्म्मसुधारकों का प्रभाव बढा, पोप पादरी और पण्डितों की दैवी शक्ति का ह्रास हुआ। विद्या की वृद्धि से स्वतन्त्र विचारों की ओर प्रवृत्ति हुई, लोग परस्पर एक दूसरे का अधिकार और कर्तव्य समझने लगे। स्वार्थसाधन में कमी और परोपकार में अधिकता हुई। अमरीका और यूरोप में * समष्टिवादियों (Socialists) का बल बढ़ने

---

*१८१२ ई० में राबर्ट आवेनने समष्टिवाद वा समाजस्वत्ववाद का प्रचार किया। आज कल अमरीका इङ्गलैण्ड, जरमनी, फ्रांस और रूस में इसका बडा ज़ोर है। समष्टिवादियों का मत है कि किसी

लगा राष्ट्र की सम्पत्ति पर प्रत्येक व्यक्तियों का समान अधिकार माना जाने लगा, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार अपना सुधार करने का पूर्ण अवसर दिया जाने का यत्न होने लगा, सर्वसाधारण में सर्वांग शिक्षा का प्रचार हुआ। जिस प्रकार रणमूर्त्ति भगवती दुर्गा को सब देवताओं के अंग प्रत्यङ्गों की शक्तियाँ मिलीं, उसी तरह हेग में शान्ति-मन्दिर की स्थापना में परस्पर विरोध व मैत्री रखने वाली अनेक शक्तियों ने मिलकर सहायता की, और वह अनुपम "अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति मन्दिर" सर्वांगपूर्ण बन भी गया † ।

राष्ट्रकी सम्पत्ति पर सब व्यक्तियों का समान अधिकार है, प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति करने का अवसर मिलना चाहिये। थोड़े से योग्य मनुष्यों का अपनी आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति दबा कर ऐशो आराम से जीवन व्यतीत करना और अन्य अधिकांश व्यक्तियों का भूखों मरना, अशिक्षित रहना और नाना प्रकार का दुःख सहना, ठीक नहीं। उनका कहना है कि (१) सर्व साधारण को बलपूर्वक (Compulsary) शिक्षा दी जाय, (२) अधिक सम्पत्ति वालों पर अधिक और कम सम्पत्ति वालों पर कम राज-कर लगाना चाहिये कि जिससे सम्पत्ति का विभाग प्रायः समान हो जाय, (३) जो लोग साहूकारों से ऋण लेने में असमर्थ हों, उन्हें नाम मात्र के व्याज पर सरकार से ऋण मिलना चाहिये, (४) सम्पत्ति तथा भूमि के अधिकार के विषय में धर्म्मानुकूल बलपूर्वक आचरण करना चाहिये, और (५) प्रत्येक व्यक्तियों का समान धर्म्म है कि जीवन के लिये आवश्यक तथा विशेष सुख की सामग्री के उपार्जन में कठिन परिश्रम करें।

† इस शान्ति मन्दिर के निर्म्माण के लिये धन कुबेर मिस्टर एण्ड्रू कारनेगी ने पहले पहल ३५ लक्ष मुद्रा दिया। डच पार्लियामेन्ट ने आठ लाख ४० हज़ार भूमि के लिये दिया। नारवे और स्वी-

आज से लाखों वर्ष पूर्व राम-रावण युद्ध से लेकर आज के युद्ध तक, लोग शान्तिपूर्वक झगड़ा निपटाने का यत्न करते आ रहे हैं—महाभारत के भीषण युद्ध छिड़ने के पहले दूर्योधन को उस समय के बडे २ राजनीतिज्ञों ने युद्ध न करने की सलाह दी थी, गुरुजनों की भरी सभा में महारानी गान्धारी ने युद्ध न करने का उपदेश किया था, भगवान श्रीकृष्ण ने पाण्डवों की ओर से दूत होकर बिना युद्ध किये ही झगड़ा निपटा लेने को बहुत कुछ समझाया था—

घुष्यतां राजधानीषु सर्वसम्पन्महोच्छिताम्।
पृथ्वीभ्रातृभावेन भूज्यतां विज्वरो भव॥—महाभारत।

पर तौ भी युद्ध न रुक सका, जो लोग कि युद्ध न करने को सलाह देते थे उन्हीं को युद्ध करने के लिये उत्तेजित करना पडा और १८ अक्षौहिणी सेना (४७,२३,६२० जन)

---

*डेन ने पत्थर दिया। डेन्मार्क ने बाग का फव्वारा बनवाया। हालैण्ड ने ईंटें दी। इटली ने सगमरमर दिया। ब्रिटेन ने दरवाजों के लिये रङ्गीन काच दिया। ब्रेजिल ने लकडी दी और दरवाजे बनवाये। बेल्जियम ने लोहे के केवाड दिये जरमनी ने बाहर का फाटक बनवाया। स्विटजरलैण्ड ने धौरहरे के लिये घडी दिया। फ्रान्स ने रंग, पच्चीकारी और चित्रकारी कराया। रूम ने दरी बिछवाया। आस्ट्रेलिया और हैती ने मेज कुर्सियां दी। रूस ने एक बहुमूल्य सगयशव का गुलदान, हंगरी ने अत्यन्त सुन्दर शमादान, आस्ट्रिया ने उसके रखने योग्य बहुमूल्य रिकाबियां, अमरीका ने कासे और सगमरमर की मूर्तियां चीन ने उत्तमोत्तम प्याले, और जापान ने मनोहर रेशम के चित्र दिये। इस तरह संसार की सभी शक्तियों की अनुमति और सहायता से शान्ति मन्दिर स्थापित हुआ। (भारी भ्रम)

कुरुक्षेत्र के मैदान में कट गई। सारांश यह कि अनन्त काल से लोग चिल्लाते आ रहे हैं कि 'मायुध्यस्व'—युद्ध मत करो, तौ भी समय २ पर भीषण युद्ध छिड़ जाता है और लाखों करोड़ों पुरुषों का संहार हो ही जाता है। सो क्यों? आख़िर यह युद्ध क्या है? और क्यों होता है?

सृष्टि, बैबिल-वर्णित रीति से एक साथ ही छः दिन में नहीं बनी। जिस रूप में आज हम सृष्टि को देख रहे हैं यह करोड़ों वर्ष के परिवर्त्तन का फल है। प्रकृति से आकाश, आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल, जल के पश्चात् पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, औषधि से अन्न, अन्न से वीर्य्य, और वीर्य्य से शरीर अर्थात् पुरुष उत्पन्न हुआ।

पश्चिमीय पण्डितों * ने भी यही सिद्ध किया है कि करोड़ों वर्ष के परिवर्त्तन से सृष्टि का आज यह रूप बना है। लाखो वर्ष मे धीरे धीरे जड़, पृथ्वी, पहाड़ नदी आदि बने। फिर बढते बढते बनस्पतियों की उत्पत्ति हुई। बनस्पतियों से उन्नति करते करते पशु आदि, प्राणी उत्पन्न हुए। पशुओं में बानरों की दशा से बढ़ते बढते बन-मनुष्य और फिर बन-मनुष्य से साधारण मानव-जाति उत्पन्न हुई।

प्रत्येक देहधारी अपनी किसिम बढ़ाने की प्रबल चेष्टा करता है। पर प्रकृति का यह भी एक विलक्षण नियम है कि देहधारी अधिक और उनकी खोराक कम पैदा हो। अस्तु; खनिज, वनस्पति पशु, और सब का राजा मनुष्य, यानी समस्त देहधारियों में, परिमाणु परिमाणु में कठिन संघर्ष स्वभावतः जारी है।

---

* Vide origin of species by Darwin.

अपनी क़िसिम बढ़ाने और जीवन रक्षा के लिये प्रत्येक देहधारी को आवश्यकतानुसार दूसरों से लडना पड़ता है। सबल, निर्बल को हड़प जाता है, उसका आहार स्वयम् हज़म कर जाता है। जो अयोग्य है मूर्ख है, दुर्बल है, वह निर्मूल हो जाता है, और जो योग्य है, बुद्धिमान है, बलवान है, वह जीवित रहता है, फूलता, फलता, और अपनी किसिम बढ़ाता है। (Survival of the fittest) इस स्वाभाविक सघर्ष या रगड़ा-रगड़ी को जीवन प्रयास कहते हैं। दूसरे शब्दों में इसी संघर्ष, रगडा–रगडी, या जीवन प्रयास को युद्ध कहेंगे।

संसार के अन्य पशुओं के समान मनुष्य भी अपनी क़िसिम बढ़ाने का यत्न करता है। स्त्री और पुरुष के मेल से सन्तान होती है, इसे कुटुम्ब कहते है। इस कुटुम्ब के प्रत्येक व्यक्ति परस्पर एक दूसरे की सहायता और रक्षा करते हैं। धीरे धीरे कई कुटुम्ब एक साथ रहना स्वीकार करते हैं। इस परस्पर के मेल जोल से वे भली भाँति अपना कार्य कर सकते हैं, दूसरे ऐसे ही मिले जुले कुटुम्बों के आक्रमण और अत्याचार से अपने को बचा सकते है। इन कई कुटुम्बों के मेल को फ़िर्क़ा क़ौम, जाति या ट्राइब (Tribe) कहते है। जैसे एक कुटुम्ब के प्रत्येक व्यक्ति को एक दूसरे के साथ बरताव करने का नियम होता है वैसे ही एक कौम के लोग भी अपने रहने सहने के अपने नियम बनाते हैं। एक क़ौम के लोग उसी क़ौम के लोगों को लूट नहीं सकते, एक दूसरे को मार नहीं सकते। क्योंकि ऐसा करने से फूट पैदा होती है, और तब दूसरी क़ौमों से रक्षा भली भाँति नहीं हो सकती। हाँ, अपनी क़ौम के बाहर दूसरी क़ौम की सम्पत्ति लूटना, उन्हें काटना, मारना सब रवा है।

समीपवासी छोटी २ क़ौमें देखती हैं कि एक दूसरे को लूटने से किसी बड़ी क़ौम के आक्रमण के समय वे एक दूसरे को सहायता नहीं कर सकते। अस्तु, जैसे कुटुम्ब से क़ौम बना वैसे ही क़ौमों के एकत्र होने से राष्ट्र (Nation) बनजाता है। इस राष्ट्र के लिये अनेक सामाजिक और धार्म्मिक नियम बनते है। स्वभावतः इसका उल्लंघन उस राष्ट्र के लोग नहीं करते, और नियमविरुद्ध चलने वालों को दण्ड मिलता है।

प्रकृति का यह नियम है कि खाने वाले अधिक और खाद्य पदार्थ कम उत्पन्न होता है, और मनुष्य में स्वभावतः अपनी उन्नति करने, अपनी वर्त्तमान दशा को जरा सा और अच्छा करने, अपने आराम में सदैव कुछ न कुछ अधिकता करते रहने का गुण है। वह (मनुष्य) स्थिर नहीं रह सकता, या तो वह आगे बढ़ेगा या पीछे जायगा—Man cannot remain stationary. He must either improve or impair.

जन संख्या बढ़ती जाती है, इसके साथ साथ आवश्यकताएँ भी बढती हैं। नए देशों में उपनिवेशन करना, नए नए बाज़ारो मे अपनी प्रभुता जमाना, नए राष्ट्रों को अपना मतावलम्बी वा आधीन बनाना, धोखे से, छल से, बल से दूसरे राष्ट्रों की सम्पत्ति हरना, किसी न किसी तरह पर अन्य जातियों का अधिकार हड़प जाना ही इस राष्ट्र का मुख्य उद्देश्य होता है। एक राष्ट्र के व्यक्तियों के लिये समाज हैं, नियम है धर्म्म है, कर्म है, पाप और पुण्य सभी कुछ है, पर उस राष्ट्र के बाहर दूसरे राष्ट्र के साथ व्यवहार करने के लिये एक मात्र स्वार्थ सिद्धि ही का नियम देखा जाता है। जिससे स्वार्थ सधे, वह कार्य्य करना परम धर्म्म है, और जिस काय

के करने से स्वार्थ में विघ्न बाधा पड़े वैसा करना भूल है, पाप है, अधर्म है। राष्ट्र नीति या युद्ध-नीति का दूसरा नाम, स्वार्थ-सिद्धि है।

पर दूसरा राष्ट्र यथाशक्ति इस स्वार्थसिद्धि में बाधा डालता है। उस समय रगडा झगड़ा आरम्भ होता है और अन्तिम परिणाम भीषण युद्ध होता है।

निज राष्ट्र की सीमा में लूट न होना चाहिये। ऐसा करने वालों को उस राष्ट्र के नेता दण्ड देते हैं। खून न करना चाहिये नहीं तो खूनी को प्राण दण्ड दिया जायगा. छोटी से बड़ी कोई ऐसी बात जिससे उस राष्ट्र के किसी व्यक्ति को कष्ट पहुँचता हो न करना चाहिये, क्योंकि वैसा करने से उस राष्ट्र में कमज़ोरी आती है। पर, पर राष्ट्र की सीमा के बाहर दूसरे राष्ट्र के साथ व्यवहार करने में किसी भी बात का निषेध नहीं रह जाता। दूसरे राष्ट्र का धन, धरणी हरना, उनकी सर्व सम्पत्ति लूटना, लुटेरापन नहीं कहाता. निज राष्ट्र के एक अदना आदमी के मारने से फाँसी मिलती है, पर दूसरे राष्ट्र से लड़ाई छिड़ जाने पर खून करने से कोई खूनी नहीं कहलाता। लाखों, करोडों को कतल करके खून की नदियाँ बहाने से, बिधवा और अनाथों को तड़पाने से, उस देश में आग लगा देने से और जो कुछ कि हानि मनुष्य, मनुष्य को पहुँचा सकता है पहुँचाने से, लोक और परलोक दोनों बनता है। निज राष्ट्र में नाम, मान, और मरने पर हरि-धाम प्राप्त होता है।

'मनुष्य, स्वभावतः एक लड़ाका पशु है।' जैसे आदमी आपस में झगड़ते हैं और पुलीस और न्यायालय की सीमा के भीतर ही पूरी लड़ाई लड़ लेते हैं, इसलिये नहीं कि उस

लड़ाई से कोई धन लाभ होगा, किन्तु इसलिये कि अपने समझे हुए अधिकार की रक्षा करना है अथवा अपने विचारानुसार बुराई करने वाले से बदला लेना है, और इस तरह क्रोधाग्नि और उबलते हुए खून को शान्त करना है। वैसे ही राष्ट्र भी अवश्य लड़ेंगे, कभी स्वतन्त्रता के लिये, कभी बल और अधिकार के लिये और कभी फैलने के लिये। जहाँ सीमा की दोनों ओर के राजाओं को अपने संकल्प और अधिकार की सत्यता का विश्वास हुआ कि युद्ध छिड़ा, ऐसे समय में क्षमा और सहनशीलता का लोग निरादर करने लगते हैं।

प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि जो लोग वा राष्ट्र लड़ने को उद्यत रहते हैं और लड़ने में सबसे अधिक व्यवसाय दिखाते है वे शान्त प्रवृत्ति वालों को निकाल बाहर करते हैं, और इस तरह युयुत्सु जाति ही स्थाईरूप से बच रहती है। "लड़ाकी जातियाँ पृथ्वी की उत्तराधिकारिणी होती है।"

कुछ हवा में महल बनाने वाले काल्पनिक, यह स्वप्न देख रहे हैं कि–"सभ्यता के बढ़ते बढते अन्ततः युद्ध और उसकी प्रचण्डता मिट जायगी।" पर सभ्यता, मनुष्य के युद्धप्रिय स्वभाव को नहीं बदल सकती। जब तक मनुष्य का स्वभाव नहीं बदलेगा तब तक संसार से युद्ध का लोप न होगा। और फिर "यदि राज्यों की दुर्बुद्धि, असावधानी, आलस्य, और अदूरदर्शिता से परस्पर संघर्षण न हो जाया करता तो मनुष्य जाति की अवनति हो जाती। युद्ध उन्नति का एक आवश्यक कारण है। युद्ध वह डंक है जो देशों को आलस्य निद्रा में नहीं पड़ने देता और सन्तुष्ट

माध्यमिक लोगों को उदासीनता से जागृत रखता है। व्यवसाय और रगड़े से ही मनुष्य की स्थिति है, जिस समय रोम सरीखा शान्ति-सम्पन्न साम्राज्य मनुष्य को मिल जायगा और उसके कोई बाहरी बैरी न रह जायँगे, उस घड़ी मनुष्य के चारों ओर सदा व्यवसायात्मिका-बुद्धि, बड़ी जोखिम् में पड़ जायगी।"

देशाभिमान, उच्चाभिलाषा, निश्छलता, चीमड़ापन, सम्पत्ति, स्वास्थ्य, मेल, बल, विद्या और बीरता आदि अनेक सद्गुण पहले पहल युद्ध से ही प्राप्त हुए और अब भी एक मात्र युद्ध से ही इनकी स्थिति है। युद्ध से ही बीरता के वह गुण आते हैं जो वास्तविक जीवन के कठिन झगड़ों में विजय पाने के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं।

'जिस प्रकार झाड़ू देने वाला कुरूप दिखाई देता है किन्तु बडा उपयोगी होता है वैसे ही युद्ध भयकर तो अवश्य दीखता है पर मनोदौर्बल्य का शोधक है। आँधी से हवा शुद्ध हो जाती है, शक्तिहीन निकम्मे पेड़ गिरजाते हैं, और दृढ मूल वाले बलवान उपयोगी पेड़ बच जाते हैं। युद्ध से राष्ट्र की राजनैतिक शारीरिक योग्यता की परीक्षा हो जाती है। जिस राज्य में सड़ा और खोखलापन आगया है उसका कुछ दिनों तक शान्तिपूर्वक फैलना सम्भव है, किन्तु युद्ध से उसका दौर्बल्य खुल जाता है।'

'उन्नति को रोकने के बदले युद्ध ने बहुधा उसके मार्गों को प्रशस्त कर दिया है। अपने अनेक युद्धों के होते हुए नहीं किन्तु उनके होने से ही एथेंस और रोम ने अपने को सभ्यता के शिखर पर पहुँचाया था। इङ्गलैण्ड, जर्मन, जापान और इटली आदि अपने अपने लोहे से अपना रुधिर बहाकर ही राष्ट्रसूत्र में बँधे हैं।"

'वाशिंगटन ने जिस समय यह शब्द लिखे थे, तब जैसे सत्य थे वैसे ही अब भी सत्य बने रहेंगे कि स्वार्थ के सिवाय और किसी उद्देश्य पर राष्ट्रों के निरन्तर दृढ़तापूर्वक आचरण करने की आशा व्यर्थ है। अन्तर्राष्ट्रीय स्वार्थ का अनुशीलन ही राजपुरुषों के गंभीर और दूरदर्शी नीति का एक मात्र आधार है। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि राजनीति में मित्रता नहीं, सम्बन्ध नहीं, शान्ति नहीं, विश्वास नहीं, सहनशीलता आदि कोई सद्गुण नहीं है। यदि एक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र के साथ सद्व्यवहार करता दीखता हो तो उसके सद्व्यवहार के ओट स्वार्थ अवश्य छिपा है। भारत और ब्रिटेन में घनिष्ट सम्बन्ध है। एक दूसरे के परम शुभचिंतक हैं। भारतवासी अपने ही सम्राट् के राज्यों में अपमानित किये जाते हैं, आस्ट्रेलिया में घुसने नहीं पाते, कैनडा की बात ताजी है, नैटाल से गान्धी आदि के कारुणिक-रुदन की हृदयवेधक आवाज अब भी हृदय को कँपाती है पर ब्रिटिश साम्राज्य, यह सब देखता है, रुदन भी सुनता है किन्तु सहसा इसे मेटने में वह, असमर्थ है। उधर बेल्जियम का जर्मनी से पददलित होना ब्रिटेन नहीं देख सका। बेल्जियम से किसी तरह का सम्बन्ध न होते हुए भी ब्रिटेन अपने ख़ास नातेदार जर्मनी* के विरुद्ध लड़ने और बेल्जियम की सहायता करने के लिये एक मात्र परोपकार से प्रेरित हो भयंकर युद्ध में आप से आप आगे आ खड़ा हुआ।

जिस तरह हम, अपमान सह जाने वाले पुरुष से घृणा करते हैं उसी तरह हम अपमान सहने वाली राष्ट्र से भी घृणा

* स्वर्गीय महारानी विक्टोरिया की पुत्री का विवाह जर्मनी के शाहजादे से हुआ था।

करते हैं। 'संसार, कातर और शान्ति के चाहने वाले मनुष्य, या राष्ट्र को, आदर की दृष्टि से नहीं देखता।'

'अन्य राष्ट्रों के स्वार्थ, अत्याचार या अपमान से बचने का उपाय एक मात्र युद्ध है। शान्ति व्यवस्था से मनुष्य का काम चल नहीं सकता।'

'इस संसार में जिस जाति को सब से अलग, झगड़ों से रहित, आराम से रहने का स्वभाव पड़ जाता है, अन्त में उसे उन जातियों से जिनकी वीरता, साहस और पौरुष का नाश नहीं हुआ है, नीचा देखना पड़ता है' "It is a law of nature common, to all man-kind which no time shall ever destroy, that those who have more strength and excellence shall bear rule over those who have less."

जर्मनी के प्रसिद्ध जनरल वर्नहार्डी का कथन है कि 'शान्त आन्दोलन विषमय होता है, युद्ध करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है'। यदि स्वार्थवश दूसरे का अधिकार छीनने के लिये नही, तो अपने देश और राष्ट्र का अधिकार बचा रखने के लिये ही प्रत्येक राष्ट्र को युद्ध के लिये तैयार रहना परम आश्यक है।

प्रसिद्ध प्रेशम ने कहा कि-" दयाशील और हितैषी राष्ट्र का क्रमशः निर्मूल, और लड़ाकी जाति की दृढ़ता होती है।" यदि दूसरे राष्ट्रों के साथ मैत्री, विश्वास, और सद्भाव से आत्मरक्षा के उपायों में हम ढीले हो जायँ, तो इस ढिलाई में युद्धप्रिय जातियों को हम पर चढ़ाई करने का अवसर मिलेगा और सभ्यता के शिखर पर बैठी हुई जातियों को

रण में हराकर असभ्य जातियाँ धूल में मिला देंगी।

अनेक भारतवासियों का अटल विश्वास है कि महाभारत के भीषण युद्ध से ही भारत ग़ारत हुआ। नहीं, भारत ग़ारत हो चुका था, इसलिये महाभारत हुआ। और फिर महाभारत के हजारों वर्ष पश्चात् विदेशियों के आक्रमण हुए, क्या तब तक इन छोटे लुटेरों से मुकाबला करने के लिये भारत में नई शक्ति नहीं पैदा हो सकती थी? क्या महाभारत के बाद भारत की वैसी दशा भी बाकी न रह गई थी जो नेपोलियन बोनापार्ट के पश्चात् जर्मनी की बाक़ी रह गई थी? क्या महाभारत के बाद का भारत आज से कुल पचास वर्ष पहले के जापान से भी रद्दी हालत में हो गया था, कि जर्मनी कुल १०० वर्ष की तैयारी से सारे ससार की सम्मिलित शक्तियों से अकेले ही भिडकर नाकोदम करे, जापान कुल ५० वर्षों में ऐसा बलिष्ट हो गया कि रूस को परास्त करे, पर भारत पाँच हजार वर्ष के बाद भी अपना सुधार न कर सका? बात यह है कि जिन कारणों से महाभारत का युद्ध हुआ वे कारण बराबर भारत में मौजूद थे और मौजूद हैं। आपस की ईर्षा, द्वेष, फूट और खुदग़र्ज़ी ने ही राष्ट्र के भीतर भीषण युद्ध मचवाया, इन्हीं पापों के कारण सिकन्दर ने पोरस पर फतह पाई, शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज चौहान को हराया, और आख़िर को भारत पश्चिमीय बणिजों के हाथ आया। ऐसी कोई हार ही नहीं जिसका कारण कोई अवगुण, कोई पाप का मनोदौर्बल्य न हो।

भारत के हार का कारण जो कुछ भी हो, उस कारण को सुधारने ही से कार्य सिद्धि होगी। इस सुधार के चौड़े रास्ते का नाम है 'योग्यता'। हम प्रत्येक भारतवासियों को बल-

पूर्वक यत्न करना है कि हम स्वयम् योग्य बनें और दूसरों को योग्य बनाएँ ।

ब्रिटेन साम्राज्य ने हमें सब तरह के अधिकार दे रखे हैं और देने की आशा दिये हैं । हम लोगों को अपनी सरकार की छत्र छाया में न्यायपूर्वक हृदय खोलकर अपनी उन्नति करनी चाहिये ।

भारत में जनसंख्या को और अधिक बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है, ३१ करोड़ पचास लाख भारतवासी यदि सुशिक्षित और योग्य बन जायँ तो इससे जर्मनी से मुकाबला करने वाले ५ राज्य बन सकें । योग्यता प्राप्त कर लेने पर जर्मनी से पाँच गुने शक्ति वाले 'नवीन भारत' के सम्मुख कौन शक्ति ठहर सकेगी हमारी सरकार को भी हम से सब तरह की सहायता मिल सकेगी । पर यह सब, करने ही से होगा । कारण को सुधार कर कार्य सिद्ध करना हमारे ही हाथों है ।

हम प्रत्येक भारतवासी, होश हवाश सँभालते ही कुटुम्ब-पोषण के भारी बोझ से ऐसे दबे जाते है कि देश, वा समाज का कुछ उपकार ही नहीं कर सकते । अपने बाल बच्चों की ठीक तरह पर परवरिश हो ही नहीं सकती, फिर औरों का क्या उपकार कर सकते है । और फिर यदि हम कदम फूंक फूंक कर रखते हैं, तो अन्य सम्बन्धियों की लापरवाही का वार हम पर आ पड़ता है । पस कहना यह है कि प्रत्येक समझदार भारतवासी उतनी ही सन्तानोत्पत्ति करे जितने को वह भली भाँति योग्य बनाने का पुरुषार्थ रखता हो । कुटुम्ब के साथ २ देश का सुधार भी हमीं को करना है । यह भार भी हमारे ही सिर है ।

हम अपने कर्तव्य पर ध्यान नहीं देते, अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये शोर गुल मचाना और कुल दोष राजा के सिर मढ़ देना जानते हैं। 'यथा राजा तथा प्रजा' बहुत ठीक है। हमारे भाग्य से हमारे राजा सर्वगुण-सम्पन्न मिले हैं। केवल हम लोगों को योग्यता प्राप्त करनी चाहिये। हमारे राजा योग्यतानुसार अधिकार देने में कभी भी पश्चात्पद न होंगे। योग्य प्रजा को संसार का सभी शक्तिमान राजा प्यार करता है। उनको योग्यता से राजा को, प्रजा के पक्ष में आना ही होता है। ब्रिटिश साम्राज्य में भारत का अभ्युदय प्रारम्भ हुआ है। हजारों वर्ष की पुरानी खुदग़र्ज़ी का पैर उखड़ रहा है, हिमालय से केपकमोरिन तक के लोग एक राष्ट्र मानने और समझने लगे हैं। ऐसे शुभ अवसर को यदि हम आलस्य निद्रा में खो देंगे तो भारत के पुनरुत्थान की आशा निष्फल होगी।

शिवनन्दन सिंह।

——(*)——

ज्ञानी जन कहते हैं कि देहधारियों की प्रकृति मृत्यु ही है, जीवन तो (उस प्रकृति का) एक विकार है।

—गीता।

—:*:—

भागती फिरती थी दुनियाँ,
जब तलब करते थे हम।
अब जो नफरत मैंने की
वह बेकरार आने को है॥

—स्वामी रामतीर्थ।

—:*:—

शिक्षा में सत्यता।

भारत में एक ही दो नहीं बल्कि अनेक सुशिक्षित श्रीमान् महाशय हैं, और उपदेष्टा हैं। ये देश के सभी मनीषिगण, यहाँ के उच्च विद्यालयों के छात्र रह चुके हैं; छात्र रूप में छोटे बड़े उच्च श्रेणी के विद्यालयों से "पास" हो कर निकले हुए हैं। इन्हीं का अनुकरण कर 'पास' के लिये लालायित अब भी बहुत से छात्र स्कूल कालेजों में जा रहे हैं, तथा 'पास' (ग्रेजुएट) हो होकर आभी रहे हैं। यह सब देख कर लोग यही कहेंगे कि देश में शिक्षा का खूब विस्तार हो रहा है। परन्तु, यदि विचार से छाती पर हाथ रख कर कहना पड़े तो हम यही कहेंगे कि असल में सुशिक्षा का विस्तार हो नहीं हो रहा है। "हितं मनोहारि च दुर्लभ वचः" के अनुसार हमारी यह बात कदाचित ही आदर से सुनी जाय, परन्तु कर्त्तव्य पालन वश हमें कहना ही पड़ता है कि, सुशिक्षित और विद्या प्राप्त मनुष्यों में जो २ लक्षण शास्त्रों में बताये गये हैं वे अनेक विद्यालयों से "पास" छात्रों में तथा छात्रावस्था व्यतीत किये हुए बड़े लोगों में बिलकुल ही नहीं पाये जाते।

किन्तु, यहाँ इससे यह भी न समझना चाहिये कि बड़े २ विश्वविद्यालयों से उपाधि प्राप्त लोगों को हम मूर्ख कह रहे हैं। ऐसा कदापि नहीं। और न यही बात समझनी चाहिये कि देश में सुशिक्षित व्यक्तियों का हम एक दम अभाव बतला रहे हैं। ऐसा नहीं, देश में सुशिक्षित लोग भी हैं, श्रीमान् भी हैं; और एक ही दो नहीं बल्कि अनेक हैं। इनके होने ही से समाज की शोभा है, जननी जन्मभूमि गौरवान्वित हो रही है

अपने को कृत कृत्य समझ रही है। हमारा कहना यह है कि आजकल की परीक्षाओं से "पास" होकर निकले हुए प्रकृत-सुशिक्षित लोगों की संख्या में, वृद्धि हो नहीं रही है। "विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्" यह हमारे शास्त्रों की प्राचीन कहावत है। किन्तु अब के "शिक्षित" लोगों में "विनयी" और "सुपात्र" लोगों का बिलकुल अभाव पाया जाता है। चरित्र नाम की जो एक वस्तु है वह भी इन "पास" हुए छात्रों में नहीं पाई जाती। यहाँ हमने "चरित्र" शब्द को व्यापक अर्थ में व्यवहार किया है। क्योंकि "चरित्र" कह देने से और विचार करने से एक ही समाज के शिक्षित और अशिक्षित लोगों में कोई विभेद नहीं रह जाता।

जो लोग कहते हैं कि हमारे ये छात्र अङ्गरेजी सीखकर—धर्महीन आचारहीन एवं जातीयता हीन शिक्षा प्राप्त कर—ऐसे हो गये हैं, उनसे भी हम पूरे सहमत नहीं हैं। क्योंकि हम देखते हैं कि बाल्यावस्था से ही गुरुकुल, ऋषिकुल और मकतब में रहे हुए और शिक्षा प्राप्त किये हुए छात्रों के चरित्रों में तथा स्कूल कालेजों के छात्रों के चरित्रों में भी कोई विभिन्नता नहीं है। इन तीनों जगहों में भी ब्रह्मचर्याश्रम की व्यवस्था ठीक से रहजाती है, नहीं कहा जा सकता। जो हो, वर्त्तमान में अङ्गरेजी डिग्री प्राप्त, संस्कृत के बड़े २ उपाधिधारी और मकतब के मुंशी मौलवी पदवियों से विभूषित अधिकांश छात्रों में, विद्या का प्रधान फल जो "विनय" और "पात्रता" होनी चाहिये, नहीं ही पाई जाती।

केवल छात्र ही क्यों, इस समय वृद्ध से भी वृद्ध व्यक्ति पात्रता और चरित्र बल से शून्य देखे जाते हैं। सभी जानते हैं कि सत्य और सरलता, चरित्र का एक प्रधान अङ्ग है।

प्राचीन काल में हिन्दू लोग इस उच्च गुणों से अवश्य विभूषित रहते थे इसका प्रमाण संस्कृत साहित्य ग्रन्थों में ही नहीं, बल्कि अनेक विदेशी ग्रन्थों में भी अधिकता से पाया जाता है*। सरलता की प्रशंसा में संस्कृत श्लोकों का अवतरण उद्धृत किया जाय तो एक छोटा मोटा स्वतंत्र ग्रन्थ तैयार हो जा सकता है। अधिक क्या, हमारे महर्षियों ने ब्रह्म में गुण का आरोप करते हुए भी "सत्" का "सत्य" के गुणों का बारम्बार उल्लेख किया है। किन्तु इस समय, हम लोग अपने आसपास चारों ओर नित्य क्या देखते हैं? भारतके भूत पूर्व वायसराय लार्ड कर्जन ने हमारे चरित्र में इस गुण का अभाव पाकर एक बार हमारे छात्रों को दो एक उपदेश की बातें बताईं थीं। इस पर देश में एक हुल्लड़ सा मच गया था। उनके ऊपर खड्ग हस्त होकर अनेक लोग वाण वर्षा करने लग गये थे। किन्तु विचार से देखा जाता, तो सचमुच ही उस सत्यपरायणता एवं सरलता का हम लोगों में एक दम अभाव पाया जाता। अब भी देखा जाय तो बिरले ही कोई वैसे निकलेंगे।

नहीं मालूम कब से—किसके अभिशाप से—हम भारतीयों में इस दुर्बलता का आविर्भाव हो गया है। यदि लोग यह कहें कि इसका कारण राजनैतिक अधीनता है—तो उन्हें इस प्रश्न पर भी विचार करना चाहिये कि राजनैतिक अधीनता

---

*Starbo Arrian, Hian-Tsiang, Khanthai, Friar, Tordanus, Feijn, Idrisi, Shamsuddin, Muropolo इत्यादि असंख्य विदेशी लोग प्राचीन आर्य लोगों की सत्य परायणता और सरलता की प्रशंसा कर गये हैं। प्रो० मैक्समूलर ने भी इसके विषय में प्रशंसा सहित खूब लिखा है।

आई कहाँ से ? आज कल के छोटे बड़े बालक बालिका सभी जानते हैं कि भारतवर्ष कभी भी बाहुबल से पराजित नहीं हुआ है। जातीय दुर्बलता ने ही भारत को दूसरे के हाथ में समर्पण कर दिया है। कुछ दिन हुए एक सिविलियन अङ्गरेज ने बड़े गर्व से कहा था,—"भारतवर्ष अङ्गरेजों के अधिकार में, किसी के बाहुबल या षड़यत्र से नहीं हुआ है—भारतवर्ष के विजय का साधन, अङ्गरेजों के चरित्र गुण से ही साधित हुआ है *"। यह बात झूठ नहीं है। कांग्रेसके अन्यतम भूतपूर्व सभापति श्रीयुत पं० बिशननारायण दर बैरिस्टर महाशय ने भी इसी बात का उल्लेख एक जगह अपने लेख में किया है, जिस लेख की आवृत्ति मात्र ही उपर्युक्त सिविलियन महाशय ने की है। अस्तु इस प्रश्न का विशेष रूप से समाधान वेही महाशय करने का प्रयत्न करें, जो लोग कि राजनैतिक आलोचना करते रहते हैं।

यहाँ हमें सूक्ष्मदर्शी सामाजिक लोगों से कुछ बातें करनी हैं। वे, समाज के प्रति विचार से देखें और कहें कि हमारे समाज में सर्वत्र यह नैतिक दुर्बलता अर्थात् सत्यवादिता और सरलता का अभाव—है या नहीं ? उदाहरण खोजने की आवश्यकता नहीं, स्वेच्छया जहाँ तहाँ सर्वत्र ही पाया जायगा। बड़े २ नाम वाले दीर्घ शिखा एवं शुभ्र रूप सुशोभित नग्नपाद

* "He (Mr. Bishar Narayan Dar) is most emphatically right India was not wan by sword or by intrigue, but by character." A District Officer on "Indian Progress and Anglo Indian Bureaucracy" in the Hindustan Review, September 1913, P. 748.

विद्वान ब्राह्मण से लेकर साहबी हैट कोट, कालर, कमीज सुशोभित बूट से आच्छादित मूर्ति मिस्टर पर्यन्त सभी लोगों में इस सरलता का अभाव है। हमारे आचार में, व्यवहार में, परिच्छद में, कार्य में, खाने में, पीने में बातचीत में सर्वत्र कपट का राज्य है। देखा गया है, एक महामहोपाध्याय ब्राह्मण पंडित एक धनी कायस्थ के घर से सहायता पाकर बाल्यावस्था से शिक्षा प्राप्त किये हैं—कायस्थ के अन्नजल से पाले पोसे गये, दिन रात उनकी खुशामद में लगे रहे,—पर दूसरे समय उन्हीं ने, अपने उन्हीं अन्नदाता को शूद्र बताया, और कहा कि प्रातःकाल में इनका मुँह देखना भी पाप है। एक बहुत बड़े पंडित जो आचार में विचार में कुल में निष्ठा में, अपने को परम पवित्र कहते है,—अपने पुत्र के लिये रात के भोजन में पूड़ी के साथ २ मांस के शोरबे की व्यवस्था किये हैं। क्योंकि, ऐसे पुष्टिकर भोजन के न पाने से ब्रह्मचारी बटु के स्वास्थ्य की कैसे रक्षा हो सकती है। चाहे बटुजी हस्त-क्रि - समापन ही से सूखे चले जाते हों। कुछ लोग तो कहते हैं कि पंडित जी स्वयं पञ्च मकार के भक्त हैं। जो हो। न्याय की रक्षा न करते हुए, वादीप्रतिवादी दोनो को व्यवस्था देना, देश-सेवार्थ समुद्रयात्रा का तो निषेध करना परन्तु उस से भी बढ़कर—भूल कर भी न करने योग्य-घर बैठे घोर कुकर्म करना, इनके बायें हाथ का खेल है।

ऐसे अनकों दृष्टान्त उपस्थित किये जा सकते हैं, जो कल्पित नहीं खूब सत्य हैं। यह तो हुई संस्कृतज्ञ पंडितों की बात, अब बाबू लोगों की बात देखिये। इन बाबू लोगों में अङ्गरेजी शिक्षा से शिक्षित डिप्टी मुन्सिफ, प्रोफेसर, मास्टर, डाक्टर एडीटर सभी लोग हैं—चाहे वे किसी जाति के हों।

ये लोग मन ही मन समझते हैं स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करना बहुत अच्छा है, कन्याओं को लिखना पढ़ना सिखाकर बड़ी अवस्था में विवाह करना ही उचित है, अल्प वयस्का दाम्पत्य-ज्ञानशून्या विधवा बालिकाओं का शास्त्र सम्मत पुनः व्याह कर देना ठीक है-पुत्र के व्याह में द्रव्य लेना तो कभी भी उचित नहीं है। आवश्यकता होगी तो इन सब बातों की यथार्थता साबित करने के लिये आँसू भरे नेत्रों से मुग्ध-कर स्वर में वक्तृता भी दे देंगे, अथवा मासिक पत्र में खूब चटपटे ढंग से लेख भी प्रकाशित करा देंगे, किन्तु कार्य के अवसर पर ? सम्पूर्ण रूप से दूसरे व्यक्ति मालूम होंगे। उस समय, ज़रूरत की बात बताकर शास्त्र की दुहाई देकर, कभी माता पिता की घुड़की कह कर, कभी पूर्व पुरुषों की परिपाटी, कभी घर की श्रीमती जी से लात खाने का भय बता कर अपना पिंड छुड़ावेंगे। कभी २ यह भी कहेंगे कि "मर्दों की बात हाथी के दाँत" दो होते ही हैं। अर्थात् खाने के और दिखाने के और। अभी हाल में "ब्राह्मण सभा" हुई थी, उपस्थित सभ्यों ने सन्ध्या करने के लिये दो घन्टे की छुट्टी माँगी थी। समाचार पत्रों में भी इसकी लम्बी चौड़ी रिपोर्ट छप गई। परन्तु कितने लोगों ने और कैसे संध्या की थी, यह एक देखने की बात थी।

कुछ दिन पहले स्वदेशी आन्दोलन से भारतवर्ष में एक हलचल सी मच गई थी। प्रान्त का प्रान्त मतवाला हो उठा था। किन्तु उससे हमें क्या शिक्षा मिली ? कितनी कपटता और स्वार्थ सिद्धि की वासना से नेता बन कर कितने लोगों ने अर्थ उपार्जन किया, इसका हिसाब क्या किसी ने लगाया ? कितनी विलायती चीज़ें देशी बताकर-बेचकर-देखते २ लोग

बड़े आदमी हो गये, उन्हें क्या देखा गया? कितने लम्पट धूर्त जाति का खून समान धन चूस कर जोंक की तरह मोटे ताजे हो गये, ऐसों पर क्या किसी ने ध्यान दिया? स्वदेशी की उत्तेजना से विलास की कितनी विदेशी सामग्रियाँ हमारे घरों में भर गईं। जो लोग आगे साबुन जानते तक नहीं थे-सुवासित अङ्गरेजी तेल आदि पहचानते तक नहीं थे-वे भी प्रचारकों के मोह मन्त्र में फाँसे जाकर दूना मूल्य देकर विलायती-वस्तु-व्यवहार के प्रेमी बनाये गये।

हम भारतीय, स्वभावतः ही भावप्रधान हैं। इसी से भाव के स्रोत में अति सहज में ही बह जाया करते हैं। घर द्वार गिरों रखके बहुत से लोगों ने स्वदेशी नामधारिणी अनेक कम्पनियों के शेयर खरीद किये थे। वर्षाकाल की बाढ़ के समान असंख्य धोखेबाजी के काम शुरू हो गये थे। किन्तु थोड़े ही काल बाद देखा गया, इसकी वजह से देश में हाहाकार मच गया।

हम लोगों में एक गुण यह भी है कि हम लोग जबानी जमा ख़र्च करना खूब जानते हैं। एक मासिक पत्र में देखा गया था कि उसके काव्यतीर्थ, एम० ए०, एल-एल० बी० उपाधिधारी एक लेखक ने दुःख का आवाहन करते हुए "दुःख का स्वागत" शीर्षक एक निबन्ध लिखा था।

हमारे दर्शनशास्त्र, दुःख निवारण के लिये ही निर्माण किये गये हैं। भगवान बुद्ध देव ने दुःख दूर करने के लिये ही "निर्वाण" रूपी महौषध का बड़े प्रयत्न के बाद आविर्भाव किया था। शास्त्रों में भी प्रायः सर्वत्र ही-"हमें सुख प्राप्त हो-दुःख किसी को भी न प्राप्त हो"-बारम्बार कहा गया है। गीता में कर्मयोगी कृष्ण ने भी कहा है-"दुःख में अनुद्विग्न

न होना ही मुनि का लक्षण है"। नीतिशास्त्र कहता है,—"प्रयोजन न रहने पर, मूर्ख व्यक्ति भी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता"। किन्तु उपर्युक्त लेखक महाशय ने लिखा है—"मैं लक्ष्मी नहीं चाहता, अलक्ष्मी चाहता हूं। भोजन नहीं चाहता उपवास चाहता हू। सुख नहीं चाहता दुःख चाहता हूं"। क्या यह साधारण बात है? नहीं इसके भीतर कोई आलङ्कारिक आध्यात्मिक भाव छिपा हुआ है (इस पर तो यही इच्छा होती है कि इन दार्शनिक लेखक महाशय को चौबीसो घन्टे उपवास कराये जॉय)। इन सब बातों का क्या फल होगा? छात्र गण इसे पढ़ कर क्या समझेंगे? आदर्श तो ऐसा होना चाहिये कि "कर्त्तव्य पालन करने जाकर दुःख आता हो तो आवे, लक्ष्मी छोड़ना चाहे तो छोड़े"। ऐसी नीति तो अवश्य अच्छी है। जैसा कहा भी है—

> "निन्दन्तु नीति निपुणा यदिवास्तुवन्तु,
> लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
> अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरेवा,
> न्यायात्पथःप्रविचलन्तिपद न धीरा॥

किन्तु, "दुःख आवे, सुख मैं नहीं चाहता" यह कैसी नीति है? और यदि लेखक महाशय की इच्छा ही हो तो वे दुःख भोगें, दूसरा क्यों भोगे? समस्त संसार सुख के लिये ही पागल है। लिखना, पढ़ना, खेतीबारी, शिल्प वाणिज्य प्रभृति उद्योग सभी सुख के लिये हैं। इसी से कहना पड़ता है कि लेखक महाशय का यह दार्शनिक भाव भूल से खाली नहीं है।

उस पत्र के सम्पादक महाशय ने भी एक जगह लिखा था—"हमारे देश के भविष्य में होने वाले गृहस्थों को—अर्थात्

वर्तमान छात्र गणों को—विदेश में, याने यूरोप अमरीका जापान प्रभृति देशों में—आकर भाँति २ की अर्थकरी विद्या शिक्षा प्राप्त करते हुए भारत में आकर गाँव २ (बिना वेतन के) घूम घूमकर ग्रामवासियों में बड़े प्रेम से मिलकर उनकी भाषा में उन्हें प्रकृत मनुष्य बनाने के लिये परामर्श देना चाहिये।" अर्थात् प्रत्येक छात्र को स्वामी रामतीर्थ विवेकानन्द, अभाव की हालत में स्वामी सत्यदेव होना चाहिये। यह उपदेश खूब उच्च है इस में सन्देह नहीं, परन्तु गृहस्थों के लिये निकलते हुए एक आदर्श मासिक पत्र के द्वारा छात्रों के प्रति ऐसा कहा जाना क्या ठीक है? भाव उच्च होने ही से क्या वह सब के लिये उचित होगा? उपनिषद् में कहा गया है—"एक मात्र ब्रह्म वस्तु का ज्ञान हो जाने से संसार में दूसरी कोई जानने की बात बाकी नहीं रह जाती।" बात ठीक है। किन्तु यह ज्ञान देगा कौन? और इस तरह का ज्ञान प्राप्त करने के योग्य है ही कौन? निष्काम कर्म का आदर्श बहुत उच्च है, परन्तु साधारण लोगों के लिये भी क्या वह ठीक है? भगवान मनु ने कहा है—"अकाम व्यक्ति की कोई क्रिया वा कर्म ही नहीं है।" कामना न होने से मनुष्य कोई कर्म्म क्यों करेगा? इसी से शास्त्रज्ञ पण्डितों ने निष्काम शब्द का अर्थ "ब्रह्म काम" किया है। जन्म होने पर जो हम लोग बालकों को विविध आकांक्षाओं की शिक्षा देते हैं तथा जिस आकांक्षा को पूरा करने के लिये ही हमारे पुत्र और आत्मीय गण विदेश आते हैं और वहाँ भविष्य जीवन के लिये तरह २ के बाधा विघ्नों को सहकर भी जी जान से विद्याध्ययन करते हैं, वे क्या इस देश में आते ही अपनी २ आशा कामना और आकांक्षाओं को छोड़ सन्यासी हो जायँ? उनमें जो विवाहित हैं, जिनके सिर

पर वृद्ध माता पिता तथा छोटे भाई बहिन कुटुम्बियों के पालन पोषण का भार है वे क्या करेंगे ? जापान क्या ऐसे ही सन्यासियों के दल से बड़ा हो सका है ?

असल बात तो यह है कि हम मुख से चाहें जो कुछ कहें पर एक दो को छोड़ हम सभी घोर स्वार्थ में हैं। अतः स्वार्थ की बात लेकर ही हमें चलना चाहिये। जो विद्वान हमारे स्वार्थ-सिद्धि के उपाय के साथ २ देश की स्वार्थ-सिद्धि के उपाय की भी व्यवस्था कर सकेंगे उन्हीं की जय होगी। स्वर्ग का स्वप्न देखने ही से यदि स्वर्ग मिल जा सकता तो बड़े सुख की बात होती, किन्तु संसार कठोर कर्म-स्थान है। वहाँ योग्यों की ही जय होती है। रोने का फल मृत्यु है।

एक तरह के और भी स्वदेश-भक्त देखे जाते हैं, जो विलायती कपड़ा पहन कर "स्वदेशी" वक्तृता झाड़ते हैं। भारतीय वक्ता होने पर भी व्याख्यान देंगे अङ्गरेज़ी में। देश की गौरव सूचक बात—देश की अतीत कीर्त्ति गाथा—केवल अङ्गरेजी में लिखें इतना ही नहीं। देखा जा रहा है, उसे गौरवशाली बनाने के लिये, अब उसे छपाने का भी प्रयत्न विलायत में किया जा रहा है।

हममें से एक नामी शिक्षक वक्ता की बात है। आपका नाम मैं प्रकट नहीं किया चाहता। आपने एक पुस्तक लिखी है, किन्तु उसे अब आप विलायत के किसी यन्त्रालय में छपवाने का प्रयत्न कर रहे हैं। क्योंकि आप के मन से वह यहाँ उनके अनुकूल सर्वांग सुन्दर नहीं छापी जा सकती। फिर भी आप स्वदेशसेवक और स्वदेशभक्त हैं। व्याख्यान में बार बार कहते हैं—"धन्य है स्वदेश की भूमि, और धन्य है स्वदेश का अन्न।" ज्ञात होता है कि उस पुस्तक में वर्णित

"स्वदेश-गुण-गाथा" तभी सार्थक हो सकेगी, जब अङ्गरेज़ कम्पोज़िटर, अङ्गरेज़ दफ्तरी तथा अङ्गरेज कम्पनी के द्वारा यह पुस्तक प्रकाशित होगी। इस तरह के जो उपदेशक हैं जो शिक्षक हैं, उन्हीं के कहने और करने में जब आकाश पाताल का अन्तर है तो उनके छात्रों और श्रोताओं से किसी अच्छे फल की आशा कैसे की जा सकती है?

हमारी इन बातों को शिक्षित समाज चाहे जिन भावों से देखे, परन्तु जब सभी लोग अपनी छाती पर हाथ रख के देखेंगे तो उनको असलियत मालूम होगी। हमारी प्रार्थना शिक्षित जनों से इतनी ही है कि वे वाक्यों में, व्यवहार में. आचार में, भोजन में, और कार्य में कपटता का त्याग करें। सरलता और सत्य का आश्रय ग्रहण करें। मौखिक देश-हितैषिता और कपटता से साहित्य को दूषित न करें। भाव के स्रोत में डूबते हुए केवल बकवाद करने से कोई लाभ न होगा, न उच्च आदर्श के लोभ मोह में पड मग्न होने ही से कोई फल फलेगा। हम लोग दरिद्र गृहस्थ हैं। हमें, न राजा की तरह ठाट बाट की बात शोभा देगी और न सन्यासियों की सी उदासीनता ही। साधारण गृहस्थ के जो कर्त्तव्य हैं उन्हें शक्ति से सामर्थ्य से जैसे हो करने का प्रयत्न करना चाहिये। करने के भी पहले दो बार के बदले दस बार उस पर विचार कर लेना चाहिये।

बहुत से लोग कहेंगे कि—"इस दीर्घ सूत्रता से तो कभी काम नहीं चल सकता। जब तक पानी में कोई उतरेगा नहीं उसको तैरना कैसे आवेगा?" किन्तु आख़िर इस उदाहरण में भी जल्दी करने की भूल की गई है। यह ठीक है कि पानी में बिना उतरे तैरना नहीं आवेगा। परन्तु आरम्भ में, थोड़े

जल में, अभिभावक की देखरेख में ही तैरना सीखना पड़ता है। यदि आरंभ में ही बिना तैरना सीखे कोई गहरे जल में कूद पड़े तो उसका परिणाम मृत्यु ही है। अतः पूर्वापर के विचार से ही कोई काम होना चाहिये।

अन्त में फिर भी कहना यही है कि कपटता के त्याग से ही जातीय चरित्र-गठन की सम्भावना होगी। अतः शिक्षा में सत्यता लाने की परम आवश्यकता है। तभी छात्र, योग्य होंगे। देश सुखी, सम्पन्न होगा। शिक्षक, उपदेशक, तथा अभिभावक प्रभृति शिक्षित जनों को चाहिये कि अपना चरित्र ठीक कर छात्रों के लिये-भावी सन्तानों के लिये-स्वयं आदर्श बनें।

सम्पादक।

—:*:—

मैं सदा अपने समय से पाव घंटा पहले हूँ, और इस बात ने मुझे आदमी कर दिया है।

—लार्ड नेलसन।

—:*:—

समाचार पत्र संसार के मुख दर्पण हैं।

—Jemes Eellis.

—:*:—

कृतघ्न मनुष्य से बुरा पृथ्वी से और कुछ उत्पन्न नहीं होता।

—Ausonius.

—:*:—

जिस मुख पर मुस्कान नहीं है, वह कभी रूपवान भी नहीं होता।

—मार्वेल।

—:*:—

अन्त्यज ।

आज दिन भारतवर्ष में एक नवीनशक्ति, नवीन विचार नवीन भाव, नवीन आदर्श का प्रादुर्भाव हो रहा है। चारो ओर से भारतवर्ष आज दिन अनेकानेक सामाजिक, राष्ट्रीय, विद्यासम्बन्धी अत्यावश्यक प्रश्नों से परिवेष्टित हो रहा है, चारो ओर से देशोन्नति की पुकार सुनाई पड़ रही है। जापान में पचास वर्ष पहले जिन नवीन-विचारों का विकाश हुआ था वेही अब भारत में फैल रहे हैं। विद्वान जापान के देशभक्त, पहले जिन क्लिष्ट व हानिकारक सामाजिक प्रश्नों के बन्धनों को तोड़ व अनेक प्रकार से परिवर्त्तन करके जापान राष्ट्र के संगठन करने में बद्धपरिकर हुए थे, वैसेही अब भारतके शुभचिन्तकों के सन्मुख आ उपस्थित हुए हैं। जब तक ये सामाजिक प्रश्न, भली प्रकार हल नहीं हो सकते, तबतक भारत को एक राष्ट्र में संगठित करना दिन के स्वप्न के समान है।

इन सामाजिक प्रश्नों में सर्वोपयोगी प्रश्न अन्त्यजों की दशा को सुधारना व उनके प्रति अपने व्यवहार को सुधारना है। इस विषय पर भारत के अनेकानेक विख्यात नेताओं ने बहुत कुछ कहा व लिखा है। कुछ लोगों ने परिश्रम कर उनकी दशा को सुधारने की चेष्टा भी की है। पर अभी बहुत करना बाक़ी है। मैं भी आज पाठकों के सम्मुख उपरोक्त विषय में कुछ लिखने का साहस करता हूँ।

राष्ट्र के सुसगठन में बल व एकता का होना अत्यावश्यक है। राष्ट्र में अथवा समाज में एकता व बल का सञ्चार तब ही होगा जब उसकी प्रत्येक शाखा बलवान-सुशिक्षित व

परस्पर द्वेष रहित होंगी। जब तक किसी राष्ट्र अथवा समाज की भिन्न २ शाखाएँ व श्रेणियाँ परस्पर द्वेषभाव को छोड़ कर, प्रीतिभाव का अवलम्बन न करेंगी, तब तक उसका सुसंगठन कदापि नहीं हो सकता। एवं यह हमारा स्वार्थ ही नहीं वरन् परम कर्त्तव्य व धर्म है कि हम कई एक शताब्दियों से जिन, अपने भाइयों को अपने कुत्सित, कठोर, व स्वार्थलिप्त व्यवहार से दूर करते आये हैं उनको फिर अपने कोमल समयोचित-आदरयुक्त व्यवहार से अपने में मिला लेने की चेष्टा करें। हम में से बहुत कम जानते होंगे कि इन अन्त्यजों की संख्या सारे भारत की जनसंख्या की पंचमांश अर्थात् ६ करोड़ है। इन ६ करोड़ मनुष्यों को जो हिन्दू कहलाते हैं—हमारे धर्म, कर्म, व्यवहार आदि मानते हैं, अपने में मिला लेना कितना अच्छा व सौभाग्य का कारण होगा? इन ६ करोड़ मनुष्यों के हिन्दू समाज में मिल जाने से उसका बल कितना बढ़ जावेगा?

मनुष्य मात्र, नहीं २ प्राणिमात्र स्वभावतः ही आदर से प्रसन्न व अनादर से क्रुद्ध हो जाते हैं। एवं यदि हम इन अन्त्यजों को शीघ्र अपने में मिला लेने की यथेष्ट चेष्टा न करेंगे तो स्वभावतः ही वे वहाँ जा मिलेंगे, जहाँ उनका समुचित आदर सत्कार होता है।

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि अनेक शताब्दियों से उनको अपने से नीचा समझते, उनको छूत मानते, उनसे घृणा करते हम अब उनके साथ मिलने, जुलने, बैठने, उठने में धर्महानि व मानहानि समझने लग गये हैं। क्योंकि जो कदाचित् पहले किसी प्रकार का केवल परहेज़ मात्र रहा होगा, वही अब समय के प्रभाव व परिवर्त्तन से हमको धर्म विहित ज्ञात

होने लगा है। यह अपूर्व प्रकार की घृणा, अब केवल भारत में ही रह गई है। केवल भारत ही अब संसार में एक ऐसा अभागा देश रह गया है, जहाँ मनुष्य मनुष्य की छूत मानते व उससे घृणा करते हैं। इतना ही नहीं वरन् बाज़ बाज़ स्थानों में बाज २ उच्चजातियाँ इन अन्त्यजों को पशुओं से भी अधिक घृणा करती हैं। इस घृणा अथवा अपवित्रता के अनेक दर्जे हैं। बिल्ली में कुछ भी अपवित्रता नहीं है—कुत्ता अपवित्र है, पर अन्त्यज इतना अपवित्र है कि उसको केवल छूने से एक दिन उपवास कर स्नान कर, जनेऊ बदलना पड़ता है। धन्य है उस अपवित्रता को! मनुष्य को पशु से भी नीच अपवित्र समझना, बस पवित्रता की हद हो गई।

वर्त्तमान काल की दशा को भली प्रकार निरीक्षण कर यह विदित हो जाता है कि इन अन्त्यजों की दशा को सुधारना केवल उनके ही लाभ के वास्ते नहीं है वरन् सारी हिन्दू-जाति, हिन्दू-समाज के उत्थान के लिये अन्त्यज उपयोगी, समयानुकूल व लाभदायक है।

एक ओर तो भारतवासी भारत सन्तानों को भारत के शासन में विशेष भाग दिये जाने के लिये चिल्ला रहे हैं और उनका प्रयत्न वास्तव में सराहनीय व आदरणीय है, पर अपने ही घर में अपने सामाजिक शासनप्रणाली में ही अपने अन्त्यज भाइयों को कुछ भी भाग देना नहीं चाहते। क्या यह न्याय-सङ्गत है?

अब हमको यह समझने का प्रयत्न करना चाहिये कि अन्त्यजों के साथ हम ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं। हम अपने ऐसा घृणायुक्त व लज्जास्पद व्यवहार के पक्ष में क्या शास्त्रोक्त प्रमाण दे सकते हैं।

बाज़ २ मनुष्यों का कथन है कि नीच मनुष्यों के साथ उठने बैठने से स्वभाव व आत्मा पर ख़राब प्रभाव पड़ता है। बाज़ २ मनुष्य कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के शरीर से एक प्रकार की अदृश्य शक्ति निकलती रहती है जिसका अच्छा व बुरा होना उस मनुष्य की नीच अथवा उच्च प्रकृति अथवा गुणों पर निर्भर है। बाज़ २ विज्ञानवेत्ता मनुष्य कहते हैं कि उन अन्त्यजों से एक प्रकार की Magnetic current निकलती है, जिससे शुद्ध पुरुषों पर ख़राब प्रभाव पड़ने का भय है। हम यह नहीं कह सकते कि ये बातें हमारी समझ में भली प्रकार आ गई हैं। यदि उनका सही होना कुछ समय के वास्ते मान भी लिया जाय तो इसका आशय यह है कि ख़राब प्रकृति वाले, अशुद्ध, दुराचारी, नीच पुरुष के साथ चाहे वे ब्राह्मण ही क्यों न हों कदापि नहीं मिलना जुलना चाहिये। मर हम ऐसा कहीं भी नहीं देखते। कई बार बड़े २ शास्त्रज्ञों के कुव्यवहार का, बड़े २ महन्तों के दुराचार का, बड़े २ नीतिविशारदों की अनीति का ब्योरा सुनने की तो हमें याद है पर उनकी कहीं भी छूत मानना—घृणा करना हमने देखा हो, हमें स्मरण नहीं पड़ता, वरन् अनेक बार पुरुषों को उनको प्रणाम करना---उनके हाथ से चरणामृत पीना, उनसे अनुमति माँगना, व उनको अपना गुरु बनाना हमने अनेक बार देखा है हमें पूरा विश्वास है।

फिर कोई ऐसा भी नहीं कह सकता कि सब ही अन्त्यज बुरे आचार व चरित्र के होते हैं। अथवा सब ही अन्त्यजों के शरीर से कोई अशुद्ध शक्ति निकलती है। वरन् उनहीं अन्त्यजों में से अनेक ऐसे विख्यात पुरुष रत्न उत्पन्न हुए हैं जिनका सारे भारतवर्ष के मनुष्यों ने आदर सम्मान किया

और अबतक आदर की दृष्टि से उनका सन्मान करते हैं । सूतजी गड़बड़ ही थे–रयदास मोची थे, बाल्मीकि चिड़ीमार थे, पर क्या उनके पाँव छूना उच्च से उच्च जाति का हिन्दू, अपना परम सौभाग्य नहीं समझता था ।

बाज़ २ मनुष्य यह कहेंगे कि थे नीच जातियाँ बहुत मैली रहती हैं तब उनकी छूत मानी जाती है । पर क्या इसका तात्पर्य यह है कि सब मैले मनुष्यों की छूत मानी जावे ? भय होता है कि सर्वसाधारण इसको नहीं मानेंगे ।

यह भी नहीं कहा जा सकता कि अविद्या के अन्धकार में पड़े रहने के कारण अन्त्यजों की ऐसी हीन दशा हो रही है । निरक्षर भट्टाचार्य्यों की हिन्दूसमाज में कुछ कमी नहीं हैं । निरक्षर गंगापुत्रों अथवा तीर्थ पुरोहितों के पाँव छूने में हमने किसी भी उच्चजाति की ललना को हिच-किचाते नहीं देखा वरन् तीर्थस्थानों में अनेक वृद्धा माताओं को अपने युवा पुत्रों को नास्तिक कहते अवश्य सुना है क्योंकि वे निरक्षर तीर्थदेवताओं के चरण कमल छूने के समय वादा-नुवाद करने लगे थे ।

तिसपर अन्त्यजों को पढ़ने के वास्ते कहीं अवसर भी तो नहीं दिया जाता । एवं उनका न पढ़ना उतना आक्षेपयुक्त नहीं है जितना उनका, जिनको पढ़ने का अवसर भी है और पढ़ने को धन भी है ।

अनेक पण्डितों के मुंह से सुना तो है कि अन्त्यजों को छूना शास्त्रविरुद्ध, नीतिविरुद्ध, व धर्मविरुद्ध है पर हमने बहुत कमों को शास्त्रों के वचन उल्लेख करते सुना है । सम्भव है पहले जब आर्यलोग भारत में आये होंगे उन्होंने

यहाँ ऐसे मनुष्य पाये होंगे जो बहुत मैले कुचैले रहते होंगे। श्वेताङ्ग आर्य जाति ने देखा होगा कि वह ऐसे मैले मनुष्यों से नहीं मिल सकती एवं खाने पीने में कुछ परहेज़ करते होंगे; यही परहेज़ अब धर्म माना जाने लगा है। इसके अतिरिक्त दुराचरण युक्तपुरुष के घर भी चाहे वह कैसे ही उच्चजाति का हो खाना वर्जित था, एवं महात्मा कृष्ण ने जिस समय वे पाण्डवों के दूत बनकर आये थे दुर्योधन के यहाँ खाना अंगीकार न किया वरन् दासीपुत्र विदुर के यहाँ सप्रेम भोजन किया।

श्रीरामचन्द्र जी का निषाध से कैसा प्रेम था हम भूले नहीं हैं। निषाध को जिसकी माता शूद्रा थी, क्या रामचन्द्र जी ने घृणा से दूर कर दिया? नहीं वरन् सप्रेम उसका आलिङ्गन कर उन्होंने संसार को दिखला दिया कि गुण व भक्ति से मनुष्य नीच व उच्च माना जाना चाहिये।

भारतवर्ष उन दिनों ऐसी गिरी हुई दशा में न था कि एक शूद्र से मिलने पर ही किसी पुरुष की जाति अथवा धर्म का नाश हो जावे।

मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रजी के भीलनी के घर में फल खाने का वृत्तान्त सुन कहो किस रामायण के पाठक के नेत्रों में प्रेमाश्रु न आते होंगे—किसका कण्ठ गद्गद न हो आता होगा।

वाल्मीकि रामायण में कहा है:-

> पाद्यमाचमनीयञ्च सर्वं प्रादाद्यथाविधि ।
> तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्मसंस्थिताम् ॥

बाज़ २ मनुष्य कहते हैं कि रामचन्द्रजी सर्वशक्तिमान थे,

एवं वे जो चाहते कर सकते थे। पर महाकवि तुलसीदास ने कहा है कि भगवान पृथ्वी पर मनुष्य रूप धारण कर सामान्य मनुष्य के समान कर्म व बर्ताव करते हैं। एवं जो कुछ उन्होंने किया संसार के हितार्थ ही किया और जो आदर्श वे हमारे वास्ते छोड गये कदापि शास्त्र के विपरीत नहीं हो सकते। भगवान अपने वास्ते कुछ और ही आदर्श नहीं छोड़ गये हैं।

बाज २ मनुष्य यह प्रमाण देते हैं कि ये अन्त्यज मैला खाना खाते हैं जिससे उनमें एक अशुद्ध शारीरिक शक्ति का विकाश हो उठता है जिसका अन्य शुद्ध मनुष्य के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ता है। पर क्या स्वय आर्य जाति के भोजन पदार्थ में समयानुसार अनेक परिवर्त्तन नहीं हो गये हैं!

बाज २ मनुष्य का कथन है कि आर्य जाति शूद्रों अथवा अन्त्यजों से कदापि नहीं मिल सकती, अर्थात् समाज में जिन मनुष्यों की जैसी दशा सनातन (पुरातन) समय से चली आ रही है उसमें कदापि परिवर्त्तन नहीं हो सकता। पर पुराणों से स्पष्ट विदित होता है कि नीच जाति भी कर्मानुसार उच्च हो सकती है। बाल्मीकि, कौन थे? एक अधम नीच से नीच चिड़ीमार। मनु ने कहा है:—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्या द्वैश्यात्तथैवच॥

अर्थात्-शूद्र अच्छे कर्मों से ब्राह्मण और ब्राह्मण अच्छे कर्मों से शूद्र हो जाता है। आपस्तम्ब में कहा है कि कर्मानुसार नीच वर्ण का मनुष्य ऊँच वर्ण का हो सकता है।

नकुलेन न जात्या वा क्रियाभिर्ब्राह्मणो भवेत्।
चाण्डालोऽपि हि वृत्तस्थो ब्राह्मणः स युधिष्ठिर॥

अर्थात्—हे युधिष्ठिर, जाति-जन्म से नहीं वरन् कर्म से मनुष्य ब्राह्मण बनता है। एक चाण्डाल भी शुभ कर्मों से ब्राह्मण बन सकता है। इससे अधिक और प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। यदि कर्म ही प्रधान माने जायँ तो अन्त्यज अच्छे कर्म करने पश्चात् क्यों अपने में न मिलाये जायँ, हमें इसके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं सूझ पड़ते।

जो मनुष्य इसके विरुद्ध कहते हैं वे बार बार शास्त्रों का नाम लेकर भी उनमें से प्रमाण नहीं देते। उनका कथन सनातन धर्मानुकूल नहीं है बस वादानुवाद की आवश्यकता नहीं।

एक समय कहा जाता है कि श्रीशंकराचार्य स्वामी काशी की एक गली से जा रहे थे कि सामने से एक चाण्डाल आ गया। स्वामी जी ने उससे अलग हटकर उन्हें न छूने के वास्ते कहा। इसपर वह चाण्डाल बोला "प्रभो, जो आप की आत्मा है सोई मेरी भी है; जिस अस्थि, रक्त, मांस का शरीर आपका बना है सोई मेरा भी है तब आप क्यों मुझ से हट जाने को कह रहे हैं"। यह सुन कर ज्ञानी स्वामीजी स्तम्भित हो गये और चाण्डाल के पाँवों पर गिर कर बोले—"सखे, तुम मेरे गुरु और मैं चेला हुआ।" ऐसे २ अनेक महान् पुरुषों के उदाहरणों को देख कर यही कहना पड़ेगा कि शास्त्रों में कहीं भी इन विचारे पुरुषों से ऐसा कुत्सित, कठोर व्यवहार करना नहीं लिखा है।

अब देखना चाहिये कि इन अन्त्यजों की दशा कैसी है और उनके उद्धार करने में किस २ वस्तु की आवश्यकता है।

चारों ओर इन अन्त्यजों के निवासस्थानों को देखकर दरिद्रता, दुःख, अविद्या, अन्धकार के लक्षण पाये जाते हैं। इसका एक कारण यह हो सकता है कि खाद्यपदार्थों का

मूल्य इतना अधिक बढ़ जाने पर उनको और २ काम करने की स्वतन्त्रता नहीं दी गई ।

गाँव में इन अन्त्यजों के घर बहुत दूर बनाये जाते हैं। इनको एक ही कुँवें से पानी निकालने की आज्ञा नहीं दी जा सकती। उसके लड़के पाठशाला में उच्चजाति के लड़कों के साथ नहीं बैठ सकते एवं वे पाठशाला में आही नहीं सकते। नाई, धोबी उनके न बाल बनावेंगे न कपड़ा ही धोवेंगे। जिन हिन्दू देवताओं की वह भक्ति व आदर करता है उनके दर्शन करने को वह कदापि देवालय में नहीं घुस सकता। वह मन्दिर में भेट, प्रसाद दक्षिणा भले ही चढावे पर वह भीतर कदापि नहीं घुस सकता। कोई गोराङ्ग जो हिन्दुओं की मूर्त्ति-पूजा की हँसी उड़ाता हो, भले ही मन्दिर के भीतर आकर सारे मन्दिर व मूर्त्तियों का चित्र अङ्कित कर ले, पर एक हिन्दू शूद्र जो बडी श्रद्धा व भक्ति से मन्दिर में आवे कदापि भीतर फटक नहीं सकता। जबतक एक शूद्र अपने को हिन्दू कह कर हमारे धर्म, कर्म में श्रद्धा एवं भक्ति रखता है तबतक उसको बारबार यह दिखलाने व समझाने की चेष्टा की जाती है कि वह एक अधम व नीच प्राणी है—यदि कोई उनमें से अपनी सन्तानों की उन्नति करना चाहता है तो सारा समाज उसके ऊपर सवार हो उसे हतोत्साह कर देते है। यदि वह कोई और व्यवसाय कर अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करे तो वह नहीं कर सकता। पर जब वह मुसलमान बन जाय अथवा ईसाई बन जाय तो बड़े से बड़े ब्राह्मण उसका खाँ साहब, मिस्टर अथवा बाबूसाहब कह आदर करेंगे, बल्कि हाथ मिलाने में भी अपना सौभाग्य समझेंगे।

उनसे काम कराने में भी परम स्वार्थ का सहारा लिया

गया है। यदि कोई शूद्र किसी ब्राह्मण के पास कच्चा नारियल लावेगा तो ब्राह्मण देवता प्रसन्नता से उसका ठण्डा जल पान करेंगे, पर यदि वही शूद्र परम पावनी मन्दाकिनी से परम पवित्र गङ्गाजल लावेगा तो वह अपवित्र हो जावेगा और द्विजों के पीने योग्य न रहेगा। क्या इसका कोई शास्त्रोक्त प्रमाण है? नहीं, केवल नारियल लाना ज़रा कठिन काम है और गंगाजल कुछ भी कष्ट न किये लाया जाता है। तालाब के बीच से कीच में उत्पन्न हुआ कमल पुष्प यदि शूद्र ले आवे तो वह देवताओं को भेंट किया जा सकता है पर यदि वही शूद्र तुलसीदल तोड लाये तो वह कदापि देवताओं को नहीं चढ़ाया जा सकता। क्योंकि चबूतरे में जमने वाली तुलसीदल को तोड़ने में भला कुछ कष्ट थोडे सहना पड़ता है। क्या ये उदाहरण स्वार्थ की झलक नहीं दिखलाते हैं? इन अन्त्यजों की स्थिति की भली प्रकार विवेचना पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने पर यही दिखलाई पड़ता है कि हिन्दू समाज यद्यपि उनसे कठिन २ काम लेती आई है, तथापि उसने उनके उत्थान में तनिक भी सहायता नहीं दी है। देखना चाहिये कि समयानुसार अब हम उनको किस प्रकार सहायता पहुँचा सकते हैं।

बाज़ २ मनुष्यों का कथन है कि उनको एक दम समाज में ले आओ उनके साथ एक दम खाना पीना एक करदो। यह बात समयानुसार ठीक नहीं जँचती। अन्त्यजों का उत्थान इस प्रकार से होना चाहिये कि जिससे किसी भी समाज में खलबली न मचे। जब वे अपने ही पाँवों से चलने के योग्य हो जावेंगे तो फिर कैसी भी खलबली मचे, उत्थान में बाधा नहीं दे सकती। हिन्दू समाज में यह जाति पाँति का प्रश्न निश्चय हानिकारक है पर अन्त्यजों की दशा सुधारने के हेतु

इसका अभी कुछ बड़ा सम्बन्ध नहीं है।

अन्त्यजों की दशा हमसे यह नहीं चाहती है कि हम आज ही उनके साथ खाना खालें। यह बात अभी बहुत पीछे की है। वे, हम से यह नहीं चाहते हैं कि आज ही हम उनके साथ व्याह सम्बन्ध करलें क्योंकि सम्बन्ध मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है और वक्तृता को ही सुनकर कोई सम्बन्ध करने नहीं दौड़ जाता। वे हम से इतना ही चाहते हैं कि हम उनसे मानुषिक बर्ताव करें और न्यायानुसार जो उन्नति वे करना चाहते है उनमें किसी प्रकार की सामाजिक बाधा न डालें। उनको इस उन्नति के मार्ग से साहस देना उत्साहित व प्रोत्साहित करना प्रत्येक पठित व्यक्ति का कर्तव्य ही नहीं वरन् धर्म है। सब से प्रथम अन्त्यजों में विद्या का अभाव है। बिना विद्या के सुधार होना कभी भी सम्भव नहीं है। कितनी ही अन्त्यजो को उठाने की चेष्टा की जाय यदि उनमें विद्या का अभाव रहेगा तो वे कदापि सम्हल नही सकते और आज कल में गिर पड़ेंगे। यदि उनमें विद्या होगी तो आज नहीं तो कल अवश्य अपनी स्थिति को सुधारने का आप ही प्रयत्न करेंगे और अन्धविश्वासी कितना ही उनको रोकें वे न रुकेंगे। विद्योत्पन्न शक्ति को कोई सामाजिक बन्धन नहीं रोक सकता। समाज को अन्त में हार मान विद्वानों की, चाहे वह कोई हो, सराहना करनी ही पड़ेगी। एवं सब से प्रथम बात अन्त्यजों में विद्या का प्रचार करना है। पर विद्या का प्रचार हो कैसे ?

अभी अन्त्यजों को मनुष्य उस स्कूल में न आने देंगे, जहाँ हिन्दुओं की सन्तान शिक्षा पाती है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि अनेक शताब्दियों से मैले कुचैले रहने के कारण अनेक

अन्त्यज मैला रहना भी एक धर्म समझने लग गये हैं और उनके साथ शिक्षा पाने में कदाचित् अनेक वितण्डावाद करें। इस वास्ते बड़े २ ग्रामों में यदि इन अन्त्यजों के वास्ते काफी स्कूल खोले जायँ और वहाँ वे साफ सुथरे रहें तो निश्चय है कुछ ही वर्षों में उनके प्रति यह सामाजिक घृणा बहुत कम रह जावेगी। अभी भारत में उच्च जाति के बालकों ही के लिये काफी स्कूल नहीं हैं फिर अन्त्यजों को कौन पूछे। पर यह कोई कारण नहीं है कि जितने स्कूल हो सकें उनके वास्ते न खोले जायँ। अन्त्यजों को शिक्षा दिये जाने में कोई भी समाज बाधा नहीं डाल सकती और जब शिक्षित हो वे अन्य मनुष्य के समान मस्तक ऊँचा करने लगेंगे तो उनको रोकने वाला भला कौन है। वे पुरुष धन्य हैं जो इन दीन मनुष्यों के उत्थानार्थ प्रयत्न करेंगे और कर रहे हैं।

> संसार दुःख दहनेन तु पिता ये
> धन्या नरा विहित कर्म परोपकाराः।

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि अपने पुराने ख्यालों व विचारों को बदलना एक दम सम्भव नहीं है पर जब दिन २ पाश्चात्य सभ्यतानुसार हम स्वयं अपनी स्थिति व विचारों में परिवर्त्तन कर रहे हैं तो कोई कारण नहीं है कि अपने अन्य भाइयों को अपनी दशा सुधारने के लिये पूरा अवसर न दें।

क्या अन्त्यजों की दशा सुधार कर हमारी राष्ट्रीयता में भी कुछ भेद अथवा प्रभाव पड़ेगा? निश्चय। अन्य पाश्चात्य राष्ट्र अधिक जन संख्या को राष्ट्र का बल मानते हैं पर हम नेत्र मूंद कर ६ करोड़ हिन्दुओं को अपने से अलग करने की चेष्टा कर रहे हैं ६ करोड़ हिन्दू! क्या यह संख्या कुछ कम है? जरा सोचिये तो, यदि ६ करोड़ मनुष्य हिन्दुओं की राज्य

से किसी बात की पुकार करेंगे तो वह कहाँ तक सुनाई पड़ेगी ?

चीन की जन संख्या पृथ्वी के सब राष्ट्रों से बढ़कर है, एवं चीन राष्ट्र का नवीन संगठन देखकर अनेक अन्य राज्यों का दिल धड़कने लगा है क्योंकि राष्ट्र की जन संख्या व उसकी एकता के ही ऊपर उसका मान व गौरव निर्भर है।

हमारे अनेक प्रस्ताव पास नहीं होते। क्यों ? क्योंकि प्रस्तावों को पेश करने में सारी समाज की शक्ति एकत्रित नहीं होती। हमने अपने समाज का एक भाग—एक मुख्य भाग—इस प्रकार अपने से वहिष्कृत कर दिया है कि वह किसी भी बात में हमारा साथ देकर सहारा नहीं दे सकता। वरन, अनेक भाँति से उलटी हानि करता है। वह भाग शक्ति प्रदान नहीं करता है वरन शक्ति हरण करता है। तब क्या उसको शक्तिशाली बनाना हमारा स्वार्थ-कर्तव्य-धर्म नहीं है ?

हम वर्षों से देखते आ रहे हैं कि हिन्दुओं की जनसंख्या न्यून होती जा रही है। मनुष्य गणना का ब्योरा पढ़ने से प्रकट होता है कि दिन ब दिन हिन्दुओं की संख्या घटती जा रही है, पर इसाई और मुसलमानों की बढ़ती जा रही है। हमारे नेता जो २ उन्नति करने का प्रयत्न कर रहे हैं उनसे भला इन अन्त्यजों का क्या विशेष लाभ है ? हमारी जातीय सभा National congress ने भला इन अन्त्यजों को सुधारने का क्या प्रयत्न किया ? हमारे माननीय सभासदों ने जो सभासदो ने जो भारत का शासन करने का दावा रखते हैं इन अन्त्यजों को सुधारने के वास्ते किन २ नियमों का प्रबन्ध किया ? यदि नहीं किया है तो अब भी बहुत समय है। It is never too late to mend सुधार करने को कभी भी देर नहीं है।

जब तक हमारे ये भाई घोर अन्धकार में पड़े रहेंगे तब तक हमारी उच्च अभिलाषायें और आदर्श, फलीभूत नहीं हो सकते, और हमारे आन्दोलनों में शक्ति नहीं रह सकती।

इन अन्त्यजों की दशा को सुधारने का प्रश्न क्या हमारे समय का है? नहीं। हमारे अनेक विद्वानों ने बहुत पहले ही उनकी दशा को सुधारने पर अपनी सम्मति देदी है।

किसी एक विद्वान पाश्चात्य कविने लिखा है:—

A wail of human misery is
ringing in my ears,
The sight of wretchedness
has filled my eyes with tears,
The myriad huts of mud and
straw where millions toil and die,
Are blots upon this fertile
land, beneath an orient sky.

अर्थात्—"ऐसी हरी भरी उपजाऊ भूमि में लाखों घास फूस की झोपड़ियाँ देखकर और उनमें लाखों दीन हीन मनुष्यों के अर्धजीवित अस्थिपिञ्जर देखकर नेत्रों में आंसू आने लगते हैं।"

स्वामी दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी राम तीर्थ, स्वामी विवेकानन्द प्रभृति पुरुषों ने बहुत पहले ही इन अन्त्यजों की दशा सुधारने के विषय में अपनी पूर्ण सम्मति देदी है।

स्वामी रामतीर्थ ने एक स्थान पर कहा है कि—"हमें भ्रातृ भाव से संगठित होकर ऊँचे उठने का प्रयत्न करना चाहिये।"

Heads high up but feet on the common ground.

यदि हम इन अन्त्यजों को शीघ्र उठाकर अपने में मिला लेने की चेष्टा न करेंगे तो हमें निश्चय है कि समयानुसार वे स्वयं ही उठ खड़े होंगे। और हम फिर उनको अपने में मिला-लेने योग्य न रहेंगे।

हमारा उनके प्रति निन्दनीय व्यवहार रहा है, पर अब हम चेते हैं। यथा सम्भव उनको सहायता पहुँचाने का हमें प्रयत्न करना चाहिये।

रुद्रदत्त भट्ट ।

—:*—

चाण्डाल को विद्या पढ़ने की जितनी आवश्यकता है, उतनी ब्राह्मण को नहीं। अगर ब्राह्मण के लड़के के लिये एक शिक्षक चाहिये तो चाण्डाल के लड़के के लिये दस। क्योंकि, प्रकृति ने जिसे स्वभावतः तेजस्वी नहीं बनाया है, उसकी ही अधिक सहायता—करनी पड़ेगी। तेल लगाये हुए मनुष्य को तेल देना पागलपन है। दरिद्र, पददलित अज्ञ-येही तुम्हारे ईश्वर हों।

—स्वामी विवेकानन्द ।

—:*:—

स्मृति रीति लिख कर नियम नीति में जकड़ कर इस देश के पुरुषों ने स्त्रियों को बिलकुल सन्तान उत्पन्न करने का यंत्र बना डाला है। महामाया की साक्षात् प्रतिमा स्वरूप इन महिलाओं को इस समय उबारे बिना, तुम्हारे लिये क्या कोई और उपाय है?

—स्वामी विवेकानन्द ।

—:*—

औद्योगिक उन्नति।

भारत की औद्योगिक उन्नति करने के लिये यूरोप की औद्योगिक उन्नति पर ध्यान देना चाहिये। वहां की औद्योगिक उन्नति का प्रधान कारण नये नये यन्त्रों का आविष्कार है। यह उन्नति, प्रायः १८ वीं सदी ही में हुई। १८ वीं सदी के पहले वेही यन्त्र उपयोग मे आते रहे जो कि ग्रीस और रोम के राज्यों के समय में थे। अर्थात् ५ वी और १८ वीं सदी के बीच मे बहुत ही थोड़े आविष्कार हुए। इसका कारण एक तो यह था कि यूरोप के मनुष्य उस समय के राजकीय झगड़ों में लगे रहे जिससे उनका ध्यान व्यवसायिक उन्नति की ओर नहीं गया। दूसरा कारण यह था कि उस समय यूरोप की प्रत्येक बात में पोप तथा उनके पादरियों की प्रधानता रही, जिनका कि उद्देश्य स्वयं धनवान बनने और समस्त अज्ञान में डूबे हुए यूरोप को अपने अधिकार में रखने का था। परन्तु लूथर और कालविन के उपदेशों से यूरोप के मनुष्यों के विचारों में बहुत परिवर्त्तन हुआ। उन लोगों ने पोप और पादरियों में अन्धविश्वास करना छोड़ दिया और प्रत्येक मनुष्य के हृदय में स्वतन्त्र विचारों का संचार हुआ, जोकि यूरोप की उन्नति का मूल कारण हुआ।

सब से पहले तेरहवीं सदी में रोजर बेकन के मन में यह विचार आया कि नये यन्त्रों के आविष्कार से मानव समाज की दशा बहुत कुछ सुधर जायगी। उसी सदी में चश्मे उपयोग में लाये गये। १४ वीं और १५ वीं सदी में यूरोप में बारूद का और छापने की कल का उपयोग आरम्भ हुआ।

लोहा गलाने का आरम्भ भी १५ वीं सदी ही में हुआ।

अठारहवीं सदी में अचानक एक के बाद एक बहुत से आविष्कार हुए, जिनने कि यूरोप के मनुष्यों की दशा में शीघ्रता से बड़े परिवर्त्तन कर दिये। प्रत्येक चीज़ को एकत्रित करके बहुत से मनुष्यों के उपयोग के लिये बनाना, अलग अलग बनाने से अधिक लाभदायक प्रतीत हुआ। इस से बड़े २ कारखाने स्थापित होगये और जहाँ छोटे २ गाँव थे बड़े २ शहर दृष्टिगोचर होने लगे।

पहले व्यापार एक गाँव से दूसरे गाँव में भी नहीं, बल्कि एक ही गाँव में एक मनुष्य का दूसरे से होता था, परन्तु अब यूरोप का व्यापार सारे संसार में फैला है। पहले की कपड़े बुनने की कलों द्वारा जो मनुष्य एक वस्त्र कठिनाई से एक दिन में बुनता था, अब एक ही मनुष्य हजारों आदमियों के लिये कपड़े एक ही रोज में बुन लेता है। जहाजों का एक जगह से दूसरी जगह जाना, खबर भेजना इत्यादि कर्म्म पहले जितने विलम्ब और कठिनाई से होते थे अब इतनी ही शीघ्रता और सुगमता से होते हैं।

यूरोपवासियों के लिये अच्छा कपड़ा प्राचीन समय में भारत से ही मिस्र और यूनान देश होता हुआ जाता था। यूरोप में बहुत ही भद्दा कपड़ा बनता था। यूरोप में न कपड़े बनाने के अच्छे यंत्र थे और न वहाँ के मनुष्य उस समय में उन्नति करने का प्रयत्न करते थे। इसका कारण शिक्षा का अभाव था। और ज्योंहीं विद्या का प्रचार बढ़ा, मनुष्यों का ध्यान भी यंत्र बनाने और औद्योगिक उन्नति करने की ओर गया।

कपड़ा बुनने में सब से प्रथम उन्नति इङ्गलेंड ने की। इलिजाबेथ के राज्य के कुछ वर्ष पहले से सूत कातने का चरखा

काम में आने लगा था। फिर कपड़े बुनने का सर्वत्र कल का उपयोग होने लगा। परन्तु इन यन्त्रों में काम बहुत देर से होता था। उस समय में इंग्लेण्ड में बहुत ही सादे किस्म का कपड़ा लट्ठा के समान बनता था। ऊन, जो इङ्गलैंड में पैदा होता था, बहुत सा तो विदेश चला जाता था, और कुछ का भद्दा और मोटा कपड़ा बनता था। ऊन के कारखाने उस समय में फ्लेण्डर्स में खुले थे। यहाँ पर इङ्गलैंड का बहुत सा ऊन आता था।

सन् १७३८ ई० में जॉनके (Jonkay) ने फ्लाइशटिल (Flyshuttle) का उपयोग इङ्गलैंड की कपड़े बुनने की कलों में किया। इसके उपयोग से थाने का धागा एक ओर से दूसरी ओर बड़ी शीघ्रता से जाने लगा और जिस कल के चलाने के लिये दो मनुष्यों की आवश्यकता थी उसमें अब एक का ही काम रह गया। फिर इङ्गलैंड में एक मण्डली स्थापित हुई, जिसका कि मुख्य उद्देश्य यन्त्रों और कारखानों की उन्नति करने का था। इस मण्डली ने यन्त्रों के आविष्कार-कर्त्ताओं को पारितोषिक देना आरम्भ किया, जिससे कि इन लोगों को बहुत उत्तेजन हुआ।

सन् १७६७ ई० में हारग्रीव (Hargreaws) ने जेनी नामक सूत कातने की कल बनाई, जिससे कि सूत कातने का काम बहुत ही शीघ्रता से और सफ़ाई के साथ होने लगा। यह कल बहुत ही उपयोगी समझी गई और इसका प्रचार भी शीघ्र ही बढ़ गया। सर रिचर्ड आर्क राइट (Sir Richard Awrkright) ने एक और नई कातने की कल निकाली, जिसमें कि सूत बहुत ही शीघ्रता से दो डंडों के घूमने से कतता आता था। इन्हीं महाशय ने सब से प्रथम

कारख़ानों में पानी की शक्ति का और फिर भाफ की शक्ति का उपयोग किया। डाकृर कार्टराइट (Dr kartright of kent) ने बुनने की कल बनाई, जिससे कपड़े बुनने का काम बहुत ही सहल होगया। इस कल का सब काम केवल एक ही चक्के के घुमाने से होता था। इसी तरह कपड़ों के कारख़ानों की उन्नति होती गई और भाप की शक्ति काम में लाने से काम और सरलता से होने लगा।

छींट पहले यूरोप में भारत से ही जाया करती थी। इसके भड़कीले रंगों के कारण इसका प्रचार यूरोप में बहुत बढ़ गया था। इङ्गलैंड मे छींट, सफेद कपड़े पर ठप्पा मार कर बनाते थे। फिर बड़ी बेलनों पर बेलबूटे बना और रंग लगा कर कपड़ों पर उन्हें फेर देते थे जिससे कि छींट बन जाती थी।

सूत कातने और कपड़ा बुनने के लिये तो बहुत से यंत्र बन चुके थे, परन्तु कपास से बिनौला निकालना अब तक बड़ा कठिन काम था। अभी तक ऐसी कोई कल नहीं बनी थी कि जिसके द्वारा कपास मे से बिनौला सुगमता से निकल जाय। यह कसर एक (Eli whitney) इली ह्विटनी नामक अमेरिकावासी ने निकाल दी। इसने जिन "Gin" नाम की कल बनाई, जिससे वह काम भी सहल होगया।

कपड़ों की कलों के सिवाय भाफ की शक्ति का उपयोग भी आधुनिक यूरोप की उन्नति का एक प्रधान साधन हुआ। इन नये यंत्रों के लिये लोहे की बहुत आवश्यकता हुई और इसके साथ पत्थर के कोयले की भी चाह बढ़ी। प्रकृति देवी की कृपा से ये चीजें इङ्गलेंड मे ही बहुतायत से मिलीं। यही कारण है कि इङ्गलेंड ही औद्योगिक उन्नति में अग्रसर रहा। इङ्गलैं॰ के अग्रसर रहने का एक कारण यह भी है कि उसे

कम्पनी द्वारा भारत से व्यापार करने का अवसर मिला। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उस समय भारत के बने हुए कपड़े पर कर लगा दिया, जिससे कि भारत में बने हुए कपड़े की बिक्री बढ़ी। इससे इङ्गलैंड के कारखानों को बहुत उत्तेजना मिली।

भाफ की शक्ति को उपयोग में लाने का विचार सब से पहले हाइगेज (Huyghenz) नामक एक डच (Dutch) पुरुष ने किया। उसका कहना था कि भाफ निकलने की शक्ति भाफ के बर्तन के मुह पर, एक ऊपर और नीचे को सरकने वाले डॉट द्वारा काम में लाई जा सकती है। फिर न्यूकामन (New common) नामक एक इंग्लैंड निवासी ने एक भाफ की शक्ति से चलने वाला एंजिन बनाया जोकि पानी खींचने के काम आ सकता था। फिर वैसे ही एंजिन में कुछ बदल कर और कुछ उन्नति कर जेम्स वाट ने उसे रेल और जहाज़ चलाने के योग्य कर दिया। फिर भाफ की शक्ति कपड़े और लोहे के कारखानों के उपयोग में आने लगी। इसी के साथ पत्थर के कोयले की भी चाह बढ़ी और खदानों में काम चलने लगा। इन कारणों से, कारखानों की उन्नति हुई। बहुत से मनुष्यों ने, सम्मिलित होकर बड़े २ कारखाने खोलने आरंभ कर दिये। इससे मनुष्यों को मजदूरी भी खूब मिलती गई और मनुष्यों का वेतन भी बढ़ा। यह दशा धीरे २ सारे यूरोप की होगई।

कारखानों की उन्नति में प्रथम फ्रान्स ने इंग्लैंड का अनुकरण किया और फिर जर्मनी इत्यादि देशों ने। इसी तरह सारे यूरोप में कारखानों की वृद्धि होगई। अब यूरोप निवासी लोगों ने बाहर से तैयार माल मँगाना बंद कर दिया।

सारे संसार में अपने यहां के बने माल के बेचने का प्रयत्न करना शुरू किया। यही, यूरोप की उन्नति का मूल कारण हुआ। यूरोपनिवासी अब कच्चा माल (बिना बना हुआ) विदेश से सस्ता मोल ले लेते हैं और अपने कारखानों में उसकी वस्तुएँ बनाकर विदेश में बेच देते हैं। इससे उनके देशों के मजदूरों को जीविका मिलती है और देश की आर्थिक दशा में उन्नति होती है।

देशों की आर्थिक उन्नति, आजकल कारखानों पर ही निर्भर है।

श्यामाचरण राय।

—:(*):—

सत्य एक मशाल है, किन्तु बहुत विशाल है। और यही कारण है कि हम सब चुन्धियाती हुई आखों से उससे दुबक कर भागने की चेष्टा करते हैं कि कहीं हम जल न जावें।

—Goethe

—:*:—

कठिनाइयों ही से जाना जाता है कि मनुष्य कितने पानी में है।

—Epictetus

—:*:—

बाह्य स्पर्श से सत्य का दूषित होना ऐसा ही असम्भव है जैसा कि सूर्य की किरण का।

—Milton.

—:*:—

जर्मनी में व्यवसाय की शिक्षा।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि जर्मनी व्यवसाय में सब देशों से बढ़ा चढ़ा था। यह व्यवसाय ही का फल था जो जर्मनी ने समस्त यूरोप ही नहीं सारे संसार को डमाडोल कर रखा था। यदि वह इस युद्ध करने का और हमारे सुयोग्य सम्राट् महोदय से दुश्मनी करने की धृष्टता न करता तो इसमें सन्देह नहीं कि वह संसार के सब राष्ट्रों से सुखी रहता।

थोड़े दिन हुए मि० डब्ल्यू गैरेट ने फ्रांस और जर्मनी की यात्रा की थी*। यात्रा का अभिप्राय वहाँ के मुख्य २ व्यवसायिक संस्थाओं की देखभाल तथा भिन्न २ व्यवसाय की प्रथाओं का मनन करना था। आपने फ्रांस और जर्मनी की व्यावसायिक शिक्षा का अति ललित ब्योरा दे रखा है। इस लेख का उद्देश्य जर्मनी की उसी व्यावसायिक शिक्षा से है।

जर्मनी की व्यवसाय प्रणाली यथेष्ट तथा बहुविस्तीर्ण है-वहाँ की सरकार का अभिप्राय एक सुदृढ़ और औद्योगिक राष्ट्र बनाने का है इस श्लाघनीय अभिप्राय को पूरा करने के लिये वहाँ की सरकार प्रत्येक रूप से प्रयत्न कर रही है— आबाल वृद्ध बनिता, सभी को चाहे वे धनी हों या गरीब अपने २ व्यवसाय की शिक्षा प्राप्त करने के लिये सुगमता प्रदान की जाती है। जो लोग व्यवसाय में अग्रसर होना चाहते हैं उन्हें व्यवसाय की उच्च शिक्षा भी दी जाती है, जितने

*—मि० डब्ल्यू गैरेट आयरलैण्ड के व्यवसाय विभाग की तरफ से फ्रांस और जर्मनी को भेजे गये थे। इस लेख का मसाला उन्हीं के निबन्ध से लिया गया है। लेखक।

बालक स्कूल जाते हैं सब को कुछ नियत अवस्था के पश्चात् व्यावसायिक शिक्षा मिलती है। व्यावसायिक जीवन के जिस मार्ग में वे जाना चाहते हैं वह मार्ग सुगम तथा निष्कण्टक बना दिया जाता है। यहाँ तक कि ग़रीब से गरीब तथा असहाय से असहाय बालक की तरफ भी उचित ध्यान दिया जाता है। उन स्कूलों में जिन्हें कण्टिनुएशन स्कूल (Continuation schools) कहते हैं कुशल और अकुशल कर्मजीवियों की दशासुधार में प्रवृत्ति दिखाई जाती है।

जर्मनी की सरकार उत्तम मध्यम तथा अधम तीनों श्रेणी के मनुष्यों की उन्नति करती है। इसी उद्देश्य को सामने रखकर वहाँ की सरकार ने व्यावसायिक शिक्षा का विभाग इस प्रकार से किया है।

(१) Technische Hochschule or Technical University अर्थात् व्यावसायिक विश्वविद्यालय। इस प्रकार का सब से उत्तम विश्वविद्यालय चारलाटेनवर्ग और म्यूनिच में है। यह विश्वविद्यालय उन लोगों के लिये है जो व्यवसाय तथा उद्यम में अग्रसर होना चाहते हैं।

(२) Handelschochschule or commercial University अर्थात् वाणिज्य सम्बन्धी विश्वविद्यालय। यहाँ पर लोग वाणिज्य की शिक्षा पाते हैं। यह विश्वविद्यालय उन लोगों की शिक्षा का केन्द्र है जो लोग व्यवसाय और वाणिज्य के नेता होना चाहते हैं इसमें प्राय. सेकण्डरी स्कूल (Secondary Schools) के विद्यार्थी प्रवेश पाते हैं।

(३) मिडिल स्कूल (Middle Schools) का दरजा उपरोक्त दोनों विद्यालयों के नीचे है। इसका सर्वोत्तम निदर्शन लीपज़िग का टेकनिकल इन्स्टीट्यूट है। इसमें प्राइमरी स्कूल

(Primary Schools) के विद्यार्थी भरती होते हैं। यहाँ पर विद्यार्थियों को तीन वर्ष तक किसी एक कार्य विभाग में उम्मेदवारी (Apprenticeship) करते हैं। इन स्कूलों का उद्देश्य सामान्य कर्मशील मनुष्यों को व्यवसाय के भिन्न २ मार्ग में शिक्षित बनाना है। अर्थात् ये स्कूल ऐसे मनुष्यों को पैदा करना चाहते हैं जो दूसरो के विचारों पर अमल करें।

जर्मनी में सर्वसाधारण की शिक्षा यहीं नहीं समाप्त होती। शिक्षा का शेष अश कन्टिनुएशन स्कूल (Fortbildungs schule) में दिया जाता है। व्यावसायिक शिक्षा का विकट प्रश्न यही पर हल होता है।

जर्मनी के स्कूलों मे उपस्थिति १४ वर्ष की अवस्था तक अनिवार्य है। प्राइमरी स्कूलो मे शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् विद्यार्थियों का अधिकांश जीवन जीविका के मार्ग में प्रविष्ट होता है। जर्मनी में प्राइमरी एजुकेशन के साथ ही राजकीय भार तथा निरीक्षण की इतिश्री नहीं हो जाती। जर्मनी के व्यवसाय प्रसार का कारण भी यही हो सकता है।

जबतक बालक १८ वर्ष की अवस्था को नही पहुंच जाता तबतक सरकार उसकी शिक्षा का निरीक्षण करती है। यही अवस्था उम्मेदवारी की सीमा है। इसी सीमा के पश्चात् जीविका का क्षेत्र आ मिलता है। जो लोग उच्च शिक्षा को नही चाहते वे लोग व्यावसायिक स्कूलो में पढने के लिये बाध्य किये जाते हैं। यहाँ पर वे लोग प्रतिसप्ताह ८ या ६ घंटे पढ़ते हैं। मि० गैरेट का खयाल है कि इन व्यावसायिक संस्थाओं का अभिप्राय उपयोगी सिटिजेन पैदा करने का है। यहाँ पर यदि यह बतला दिया जाय कि उपयोगी सिटिज़ेन किसे कहते हैं तो मेरे समझ में असगत न होगा। जर्मनी के एक डाक्टर

इसकी परिभाषा यों लिखते हैं-" A useful citizen is one who contributes directly or indirectly through his work towards making the state a better and more cultured community "

अर्थात् उपयोगी सिटिज़ेन वह है जो मनुष्य अथवा गौण-रूप से अपने कर्मों के द्वारा राज्य को सुदृढ़ और सुयोग्य जनसमूह बना देता है।

अपने बालकों को उपयोगी सिटिज़ेन बनाने के लिये वहाँ के स्कूल जिन २ प्रश्नों को हल करते है उन्हें भी सुन लीजिये-

(१) ये स्कूल बालकों की मस्तिष्क शक्ति को बढ़ाते हैं। साथ ही साथ उन्हें हस्तकारी में भी निपुण करते हैं और गुणी बनाते हैं।

(२) ये स्कूल नवयुवकों को यही सिखाते हैं कि तुम अपने गुणों को अपने सहपाठियों तथा मित्रों की सेवा में लगाओ।

(३) ये स्कूल विद्यार्थियों को विविध शिक्षाओं को जनता की आशा शृङ्खला से बाँधते हैं।

वास्तव में स्कूलों का उद्देश्य ऐसा ही होना चाहिये। नैपुण्य, बुद्धिचातुर्य्य तथा देशानुराग उपयोगी सिटिज़ेन बनाने के लिये अत्यावश्यक हैं। जर्मनी ने इनकी प्राप्ति के लिये कुछ भी नहीं रख छोड़ा है—यही कारण है कि व्यवसाय में उसकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती गई।

जब बालक व्यावसायिक स्कूल में भरती होता है तब जिन विषयों को वह पढ़ना चाहता है उन्हें वह स्वयं स्वतंत्रता से चुन सकता है। जर्मनी में सब से निकृष्ट जीविका की भी

शिक्षा दी जाती है। सामान्य विषय जो उन्हें पढ़ाये जाते हैं वे भी उनकी इच्छा के अनुकूल ही होते हैं। बालकों की प्राथमिक शक्ति को बढ़ाने के लिये विशेष ध्यान दिया जाता है। जो लोग अकुशल कार्य (unskilled work) को करते हैं उनकी संख्या अब कम हो रही है। प्रत्येक कंटिनुएशन स्कूल में कारखाने भी होते हैं। एक कारखाने में केवल १६ विद्यार्थी काम कर सकते हैं। इसी स्थान में बालकों के कलाकौशल में उन्नति होती है—मि० गैरेट लिखते हैं कि यहाँ पर नैपुण्य की सीमा लम्बी चौड़ी करदी जाती है।

जिन २ प्रकार से बालक की बुद्धि बढ़ सकती है उनका उनका सबका प्रयोग जर्मनी में होता है। सामान्य शिक्षा के लिये बालक प्रत्येक रूप से उत्साहित किया जाता है। किसी प्रकार का ज्ञान परिपूर्ण नहीं हो सकता तबतक यह न मालूम हो जाय कि व्यवहार में उसका प्रयोग किस प्रकार से करना चाहिये। फिर एक बात और है जर्मनी में ऐसे २ योग्य अध्यापक हैं जो सर्वदा लकों को ऐसी ही शिक्षा देते हैं जो वास्तव में उपयोगी होती है। क्लास में विद्यार्थी एकाग्रचित्त होकर बैठते हैं और इस तरह निज कार्य में उनकी प्रीति प्रतिदिन गाढ़ी होती जाती है।

जर्मनी की व्यावसायिक शिक्षा संक्षिप्त रीति से दिखला दी गयी है। लेख विस्तार के भय से मैं अधिक नहीं लिख सकता। लेख की समाप्ति स्वयं मि० गैरेट के मुख से सुनिये—

"The great impression made on my mind was that a generation of this training which began in munich about ten years ago, will have the effect of making that nation the most skilful in the

world, and will, as things stand enable them to overwhelm all competitors, ourselves among the number"

अर्थात्—"सब से बड़ी बात जो मेरे हृदय पर अंकित हुई वह यह है कि इस शिक्षा के पाने वाले (जिस शिक्षा का श्रीगणेशायनमः दस वर्ष हुए म्यूनिच में हुआ था) जर्मनी को सारे संसार में बलिष्ठ बना देंगे। यदि ऐसी ही दशा रही तो जर्मनी वाले समस्त प्रतिस्पर्द्धियों को व्यवसाय क्षेत्र से मार भगायेंगे हम लोग भी भागने वालों में होंगे।"

—:*:—

जो मनुष्य पुरानी रीतियों के दास होते हैं, उनके साथ काल खेलता है।

नीति।

—*—

इस बात पर तो मुझे अकसर पछताना पड़ा है कि मैं बोल क्यों पड़ा, किन्तु इस बात पर कभी नहीं कि मैं चुप क्यों रहा।

—साइरस।

—:*:—

नये युग में, नये उपाय और नये ही मनुष्यों की जरूरत पड़ती है।

—J R Lowell

—:*:—

शरीर तो एक न एक दिन जायगा ही, तब निकम्मों की तरह क्यों जाय? मुर्चा लाकर नष्ट होने से काम करते करते घिस कर नष्ट हो जाना अच्छा है।

—स्वामी विवेकानन्द।

—:*:—

जॉन केसिल का छापाखाना ।

विलायत में इस बड़े कारखाने का संचालक, सस्ती पुस्तकें प्रकाशित करने के लिये खास तोर से मशहूर है। सन् १८५१ में जॉन केसिल ने इतिहास, जीवनचरित्र और विज्ञान की पुस्तकें प्रकाशित करना आरम्भ किया था और प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल ७ पेन्स (सात आने) रक्खा था।

जॉन केसिल, सन् १८१७ में मेंचेस्टर नगर में पैदा हुआ था। थोडी उमर में बेचारे के पिता का देहान्त हो गया। उसकी माता जीवित थी। उसके पिता ने कोई ऐसी जायदाद नहीं छोड़ी थी जिससे जीवन निर्वाह हो जाता। पिता के मरने के बाद उसका मन नाचघरों की ओर आकर्षित हुआ। वहाँ जाकर उसने गाने बजाने का अभ्यास कर दिया, परन्तु थोडे ही दिनों में वहाँ से उसकी तबीयत उचट गई। इसके पश्चात् वह एक जुलाहे के कारखाने में भरती हुआ, परन्तु उसका मन वहाँ भी न लगा। फिर उसने बढ़ई का काम सीख कर फेरी लगाना आरम्भ कर दिया। भाग्यवश उसके मन में यह उमंग आई कि लण्डन जाना चाहिये। जिस समय वह लण्डन पहुँचा था उस समय उसके पास केवल डेढ़ पेन्स (डेढ़ आना) था।

मार्ग का ख़र्च उसने गा कर और मादकवस्तुनिषेध पर व्याख्यान देकर निकाला।

सन् १८४१ में जॉन केसिल ने विवाह किया और काफी (कहवा) का रोज़गार करके अच्छी उन्नति की। उसको

सफलता का मुख्य कारण यह था कि उसने कम दामों के बण्डल बना कर बेचना आरम्भ किया था। जब इस व्यापार में उसे सफलता प्राप्त हुई, तब एक रोज़ उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि पुस्तक भी बहुत कम मूल्य की तैयार की जाय, तो मन माना फ़ायदा हो सकता है। क्योंकि लोगों के अज्ञान का कारण यह है कि उन्हें पुस्तक खरीदने का मौका नहीं मिलता। इसलिये जॉन केसिल ने आरम्भ में एक साहित्यपत्रिका निकाली और उसका मूल्य ४, पेन्स फ़ी सप्ताह रक्खा। इसके बाद सन् १८५२ में उसने एक और पत्र निकाला जो इस समय तक जारी है। सन् १८५१ की मशहूर प्रदर्शनी के समय उसने प्रदर्शनी से सम्बन्ध रखने वाली एक मासिकपत्रिका निकाली थी। उसकी ग्राहक सख्या बहुत ही शीघ्र ४० हजार तक पहुँच गई। उसके साथ ही लण्डन कन्डक्टर नामक एक और पत्र निकाला गया, जिसकी ३७ हजार प्रतियाँ एक मास के अन्दर ही बिक गई। प्रत्येक प्रति का मूल्य केवल १ पेन्स था। सन् १८८६ में प्रोफेसर हेनरी मौर्ले के सम्पादकत्व में नेशनेल लायब्रेरी के नाम से २१४ पुस्तकें प्रकाशित की गईं और प्रत्येक पुस्तक का मूल्य ६ पेन्स और बिना जिल्द वाली का, मूल्य ३ पेन्स रक्खा गया। सन् १८८६ से लेकर इस समय तक ६२ लाख ७० हज़ार पुस्तकें बिक चुकी हैं।

सन् १९०८ में इस कारखाने से १२० किताबों की एक और पुस्तक-माला पीपुल्स लायब्रेरी के नाम से प्रकाशित हुई है। इस माला की प्रत्येक पुस्तक का मूल्य आठ पेन्स रक्खा गया है। इस समय तक २१ लाख ३० हजार प्रतियाँ बिक चुकी हैं। वास्तविक बात यह है कि जो लोग विद्या प्रेमी हैं,

पूंजी कम है और बड़ी मुश्किल से कुछ थोड़ा बहुत पुस्तकें खरीदने के लिये बचा सकते हैं, उनके लिये वे किताबें बड़े काम की हैं। जॉन केसिल के छापेखाने का दफ्तर और छापाखाना दोनों एकही मकान में है। अब यह शानदार कारखाना २०० एकड़ ज़मीन पर फैला हुआ है। उसमें पाँच मंज़िल के मकान बने हैं। ७० से ज्यादा मशीनें दिन भर चला करती हैं। और किताबें बिका करती हैं। हर एक मज़दूर ८ पेन्स में सब से मशहूर किताब खरीद सकता है।

सांराश यह है कि वह आदमी जो "मेञ्चेस्टर एक्सचेन्ज" बनने के समय बढ़ई का काम करता था, उसने अपना काम ऐसी सफलता के साथ चलाया कि आज १५ सौ आदमी स्वयं उसके नौकर हैं। कम मूल्य पुस्तकों और पत्र पत्रिकाओं के जरिये से, वह आज सारी दुनिया में ज्ञान की वृद्धि कर रहा है। एक हम हिन्दुस्तानी, हैं, जिन्हें, काम करने की तमीजही नहीं। यदि कोई काम करना भी चाहता है तो डाह करने वाले तालियाँ बजा कर उसे गिराना चाहते हैं।

नारायणप्रसाद अरोड़ा।

—:(*).—

जब सम्मान और स्वतंत्रता बाजी पर लगे हुए हों तो जो दाम देदिये जाय थोड़े हैं।

—Mr: Asquith.

—:*:—

सत्पुरुषों का धन बरस बादलों के जलपान की भांति, दे देने के लिये ही होता है।

—कालिदास।

—:*:—

अदेय दान तथा पुरोहित और यजमान।

भारतवर्ष में जिधर देखा जाता है उधर अदेय दान की भरमार मच गई है, न कि केवल उत्तरी हिंदुस्तान में बल्कि हिमालय से लेकर अन्तरीप कुमारी तक इसके अनुयायी वर्त्तमान हैं। एक और भी बात है, कि जिसे एक, अदेय दान बतलाता है उसे दूसरा देय कहने में कुछ भी संकोच नहीं करता। परन्तु अब तो समय ने पलटा खाया है, कपोल कल्पित बातों के लड़ाने का अवसर नहीं। प्रत्येक मनुष्य को निष्पक्ष भाव से अनुसन्धान करने की आवश्यकता है। अधिक नहीं, जिन्हें भारत माता से कुछ भी प्रेम है, जो यह चाहते हैं कि स्वदेश दिन दिन उन्नति की राह पर चले, अपने देशवासी सुख पूर्वक रहें उन्हें अदेय दान की चोट से दूर रहना चाहिये। इस अदेय दान से बचने के लिये योगनिद्रा की आवश्यकतानहीं, इससे बचने के लिये एकमात्र उपाय स्वदेश प्रेम ही है। जिनके हृदय में इस प्रेमलता के अङ्कुर उग चुके है, वे अवश्य इस अदेय दान के प्रलयकारी विष से दूर रहेंगे और दूरही रहना उनका परम कर्त्तव्य है।

विचारशील पुरुषों से यह बात छिपी नहीं है। शायद भारतवर्ष ही एक अभागा देश है जहाँ ऐसे दान की प्रथा प्रचलित है। कारण अज्ञात नहीं, जब भारतवर्ष उद्योगहीन हो गया–पुरुष श्री जाँगरचोरी करने लगे–तभी से हर बातों में केवल ईश्वर की सहायता की ज़रूरत पड़ी। देख भाल से भी ज्ञात होता है कि ईश्वर ही को खुश करने के लिये इस दान का जन्म हुआ। आज तक भी प्रत्येक भारतवासी बुद्धि-

हीन होने पर जब देखता है कि उसके पौरुष से कोई कार्य नहीं हो सकता, तो वह झट दो चार सत्यनारायण की कथा मान देता है। इसकी प्रथा इतने ज़ोरों से प्रचलित है कि बीसवीं शताब्दी में भी जब इस देश के प्रत्येक भाग में पाश्चात्यदेशों की विद्या प्रकाशित हो रही है तब भी वे पुरुष जिन्हें नवीन शिक्षा की गन्ध नहीं मिली है अपने उद्योग से कार्य नहीं करना चाहते। बात २ में वे कथा वार्त्ता पूजा पाठ की ध्वनि मचाये रहते हैं। वास्तव में वे भूलते हैं। वे नहीं समझते कि नीतिज्ञ भर्तृहरि क्या बतलाते हैं * "दैवेने देयमिति कापुरुषाः वदन्ति।"

इसमें सन्देह नहीं कि भारत की बहुत कुछ अवनति इसी दान की प्रथा से हो चली है और जब तक भारत के नर नारी इस दान की प्रथा को न रोकेंगे, तबतक अवनति का मार्ग कदापि न बन्द होगा। क्योंकि मेरी समझ में अदेय दान के द्वारा कार्य को सफल करने की इच्छा करना हवा में मन्दिर बनाना है और जल में रेखा खींचना है। अदेय दान से ईश्वर को प्रसन्न करना, धर्म की उन्नति समझना और अपने सुख की वांछा करना ईश्वर के आँखों में धूल झोंकना है। ख़ास कर भारत में जहाँ कर्मफल बहुत ज़बर्दस्त समझा जाता है वहाँ कोई पुरुष कर्महीन होकर कैसे कोई कार्य कर सकता है। भला यह कहाँ सम्भव है कि पाप करते हुए प्रयाग में जाकर गङ्गा में स्नान करने से, तथा धन द्रव्य देकर पण्डों की

---

*उद्योगिनं पुरुष सिंह मुपैति लक्ष्मीः
दैवेन देयमिति कापुरुषाः वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्म शक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः॥

परितृप्ति करने से, मनुष्य पाप से छुट्टी पा सकता है। जब ईश्वर ने यह क़ानून बना रखा है कि जो जैसा कर्म करेगा वह वैसा फल पावेगा, तो पाप करते हुए पाप से कैसे कोई छुट्टी पा सकता है। ऐसी दशा में पाप से छुट्टी पाने का एक ही उपाय हो सकता है, आगे पाप से बचो। पाप मत करो। यदि पापी होने पर भी तुम्हें ईश्वर क्षमा करता है तो यह उसकी असीम दया है ऐसा करने के लिये तुम उस पर दावा नहीं कर सकते।

आजकल भारतवर्ष में दो प्रकार के मनुष्य हैं। एक वे हैं जो देश का प्रेम करते हैं और मनुष्य जाति की सेवा ही अपना परम धर्म समझते हैं। इन्हें अटल विश्वास रहता है कि ईश्वर की सेवा वास्तव में उसके पुत्र तथा पुत्रियों की सेवा में है। वे इसको भली भाँति जानते हैं कि इस संसार में आने का प्रयोजन प्राणी मात्र का उपकार ही है, उनके हृदय पर यह कहावत अङ्कित रहती है—

The truest may of serving God is to do good to man

अर्थात् ईश्वरोपासना का सच्चा मार्ग मनुष्य सेवा ही है।

दूसरे प्रकार के मनुष्य वे होते हैं जो अपनी सम्पूर्ण शक्ति अथवा थोड़ी बहुत शक्ति परलोक हित साधन ही में लगाते हैं। वे देश की सेवा करना नहीं जानते, वे प्राणी मात्र का उपकार करने से सदा भागते हैं, उनमें स्वार्थप्रियता विशेष रहती है, उन्हें सदा यही फ़िक्र रहती है कि लोक चाहे रसातलत को चला जाय लेकिन परलोक अवश्य बने। यही कारण है कि इस कक्षा के लोग ज्यादातर पहाड़ों की कन्दरा में बैठने के लिये धावा करते हैं। ये

समझते हैं कि केवल यहीं बैठकर और देश त्याग कर ईश्वर का ध्यान करने से इस जीवन जञ्जाल से मुक्ति मिल सकती है। परन्तु यह विचार उनका भ्रान्तिमूलक है, ऐसा करने से वे केवल अपनी आत्मा के लिये मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। यदि वे देश सेवा कर देशवासियों को मुक्ति दिला सकते हैं तो इसमें सन्देह नहीं कि साथ ही साथ उन्हें भी मुक्ति प्राप्त हो सकती है। सच कहा जाय तो परलोक-साधक-श्रेणी के मनुष्य बहुधा देश-शत्रु हुआ करते हैं। ये लोग जो दान करते हैं उससे देश को लाभ नहीं बल्कि हानि पहुँचती है, ऐसे दान को हम अदेय दान कहते हैं। यह दान हमारे देश में बहुत दिनों से चला आता है। और इसी से यह दान की प्राचीन प्रथा है, इस प्रथा ने हमारे देश को नेस्तनाबूद कर दिया है। शिक्षित समाज अच्छी तरह से जानती है कि इस प्रथा से आज कल भी देशोन्नति में कितनी रुकावटें पड़ती हैं।

निरक्षर पुरोहित, व्यभिचारी पण्डा, छली साधु और परिश्रम हीन ब्राह्मण तथा आलसी मनुष्य को जो कुछ दिया जाता है वह अदेय दान है। लाखों रुपये जो प्रतिवर्ष तिल-कधारी बाबा को प्राप्त होते हैं उसे अदेयदान कहा जायगा। इस दान से प्राणी मात्र का नहीं, परन्तु एक मनुष्य का लाभ होता है, फिर भी बहुधा उस एक मनुष्य का उपकार नहीं किन्तु अपकार होता है। इसके विपरीत जो द्रव्य देश हित के लिये व्यय किया जाता है वही सच्चा दान है। उसी दान से केवल देश का हित हो सकता है। यह केवल कल्पना की बात नहीं है, नीतिज्ञ पुरुषों का सदा से यही विचार रहा और सदा के लिये स्थिर भी रहेगा—"देशे काले पात्रे च यद्दानं

तत्सात्विकंविदुः" जिन लोगों को यह कहावत याद है वे स्वयं समझ सकते हैं कि दान कब, कहाँ और किसके हाथ में होना चाहिये।

अब यह देखना है कि अदेय दान की प्रथा चली कैसे। सांसारिक उन्नति की आदि में प्रत्येक मानव को समाज में अगर ऐक्य का कोई बन्धन था तो वह परलोक प्रियता ही थी। भारतवर्ष के इतिहास से भी ज्ञात होता है कि यहाँ के प्राचीन निवासियों में भी यदि कुछ भी एकता के अङ्कुर उगे थे तो वह भी केवल परलोक प्रेम ही के द्वारा। इसमें कुछ भी निन्दा की बात नहीं कि प्राचीन भारत में राष्ट्रीय एकता न थी, अनेकों राज्य स्थापित थे। एक दूसरे का शत्रु था, स्वदेश प्रेम के चिन्ह तक भी न थे। परलोक बन्धन ही एकता का कारण था। प्राचीन भारतवासी यहाँ तक नहीं जानते थे कि स्वदेशोन्नति किस वस्तु का नाम है। जो कुछ दान वे करते थे वह कल्पित स्वर्ग के सुख के लिये ही होता था। यह उनके दान रीति से स्पष्ट है। दान की इस रीति ने कर्मशील ब्राह्मणों से भिन्न पुरोहित इत्यादि की एक समाज स्थापित कर दी। यहाँ पर पुरोहितों की माया के विषय में कुछ उल्लेख करना असङ्गत न होगा। यदि हुआ भी तो पाठक मेरी इस कमजोरी को क्षमा करेंगे।

पुरोहित-माया सर्वव्यापिनी है। इसके भ्रमजाल से प्राचीन समय में कोई देश बचा न था। सब देशों में इनके सुधार की आवश्यता पड़ती गई और होती भी गई *। इंगलैण्ड

* मेकाले ने लिखा है कि एक समय ऐसा आगया था जब इङ्गलैण्ड के पुरोहित बाबा लोग घोड़ों को खरहरा भी करते थे। ईश्वर करे यहा के पुरोहितों के लिये यह समय न आवे।—ले०

और रोम की लाठी तो इन ही पर टूटी। इनके रङ्ग में अगर भङ्ग पड़ा तो यहीं पर, इनकी करतूत का यदि गुल खिला तो इंगलैण्ड और रोम के इतिहासों में। आजकल भी पाश्चात्य विद्वानों ने विज्ञान के बल से इस माया के रहस्य को खोल कर सब को दिखला दिया है। विज्ञान ने तो पुरोहित माया को झूठा साबित कर धूल में मिला दिया है। परन्तु भारतवर्ष ऐसे अभागे देश में विज्ञान के अभाव से पुरोहितों की माया अब तक बढ़ी चढी है। सचमुच वह पुरुष धन्य होगा जो इस देश को इस माया से विमुक्त कर सके। हम मानते हैं कि हमारे कुछ मान्य माहात्माओं का अवतरण इस देश में इसी कार्य के लिये हुआ था। और यद्यपि सफलता जितनी चाहिये उतनी प्राप्त न हो सकी, तथापि आशा है कि वह समय अब दूर नहीं है जब यह देश इस मायापाश से विमुक्त होगा।

अब यह देखना चाहिये कि इन पुरोहितों का स्थिति-संस्कार कैसे हो चला। लोगों का यह विश्वास था कि यदि एक पुरोहित बाबा हमारी तरफ से ईश्वर की प्रशंसा करते रहेंगे तो निस्सन्देह ईश्वर प्रसन्न होकर उनको धनधान्य पुत्र पुत्री से परिपूर्ण बनावेगा। पुरोहित बाबा का अब क्या पूछना। अब तो इनके यजमान, इनके हाथ के गुडिया हो गये॥ आज-कल भी यह अधिकार कहीं २ पुरोहितों को मिला है। वे यजमान को जिधर चाहते हैं उधर ले जाते हैं। वे अगर यजमान से कहते हैं कि बेटा बैल को चार सींग होते हैं और घोडे रात को उड़ते हैं तो यजमान महाशय मानने को तयार रहते हैं। वेद शास्त्र की बातें कुछ और हैं और इन लोगों की बातें कुछ और। इन लोगों का एक भिन्न शास्त्र है जिसके लिये

कोई प्रमाण नहीं। किसी काम के करने के लिये समय कितना ही अच्छा हो, परन्तु यदि पुरोहित बाबा की इच्छा न हुई तो वह समय दूषित होगा। भरणी और भद्रा का सवाल अवश्य पेश किया जायगा। कई मौजे में हमने यहाँ तक भी देखा है कि पुरोहित बाबा की बातों को सुनते २ घर के घर पुरोहित बाबा बन जाते हैं। कहीं दश बीस कदम भी यदि उन्हें जाना पड़ा तो वे नाक का स्वर ज़रूर फूकेंगे। बायाँ सुर चलता है या दहिना। इसी के जानने में वे अवसर खो बैठते हैं। कार्य सफल नहीं होता और हाथ मीजते २ ईश्वर के कन्धे पर आ लटकते हैं। सन्तोष भी खूब करते हैं कि साइत अच्छी नहीं थी, कोई काम हो कैसे। जो लिलार में दरज है वही होगा। फिर क्या कहना है उनके मुँह से सुन लीजिये—"होइहै वही जो राम रुचि राखा।"

पाठको, ऐसी बातें हमारे देश के अन्धविश्वास हैं। फिर भी अगर कहीं प्रस्थान करते समय छींक हुई तो मनुष्यों के प्राणतक निकलने लगते हैं वे अधमरा हो जाते हैं और यात्रा की पूर्त्ति करना तो दूर ही रहता है। इस प्रकार से आजकल हमारे पुरोहितों में अनेक प्रकार के गुण पाये जाते हैं। और इनके गुण ग्राहक, इनके यजमान ही हैं। अब उचित इसी में होगा कि जिस प्रकार से प्रत्येक मनुष्य भारतवर्ष में अपने सुधार के लिये प्रयत्न कर रहा है उसी तरह पुरोहित बाबा को भी चाहिये कि अपना सुधार स्वयं करने के लिये कमर कस लें। जिसका फल यह होगा कि जो कुछ उन्हें उनके यजमान से मिलेगा वह असद्मार्ग में न जाने पावेगा। निरक्षर होते हुए भी अब पुरोहित कहलाने का अवसर नहीं। भोलेभाले यजमानों को ठगकर अब रुपया पैदा करने का

अवसर नहीं। तुम्हारी चौकी पर सत्यनारायण बाबा की हँसी उड़ाना ठीक नहीं। भगवान कृष्ण पर कलंक लगाने का समय जाता रहा। व्यास गद्दी पर करवट लेने का भी वक्त हाथ से निकल गया। जमाना कुछ और ही है। देश सुधार के लिये पुरोहितों को चाहिये कि वे इन बातों को याद र खें।

यजमानों को भी अधिक सचेत होने की जरूरत है। जो दान इनको करना हो वह बहुत समझ बूझ के साथ हो। यजमान को दान करते समय देख लेना चाहिये कि जो दान वह करता है उससे न कि केवल एक व्यक्ति का भला हो परन्तु दस का, न कि केवल दस का, परन्तु सौ का इत्यादि। जो दान असत् मार्ग में जाता है उसकी तुलना ठीक उसी श्रुतायुध गदा से हो सकती है जिसका उल्लेख महाभारत के द्रोणपर्व में आ चुका है। इस गदा की कैफ़ियत यह थी कि जिसका लक्ष्य पर इसका प्रयोग होना चाहिये यदि उस पर न हो सका तो यह वापिस आकर गदा चलानेवाले ही को जान से खो देता है। उसी प्रकार जिस दान का जिस मार्ग में अभीष्ट है यदि वह उस मार्ग में न जाकर किसी असन्मार्ग में प्रविष्ट हुआ तो वह दान निस्सन्देह दाता का उपकार नहीं, बल्कि अपकार करता है। इससे यजमानों तथा दाताओं का हित तभी होगा जब दान का प्रयोग अच्छे कामों में हो। देश का कल्याण इसी प्रकार के दान से हो सकता है। और हमारा भी कल्याण इसी से।

पाटेश्वरीप्रसाद त्रिपाठी।

—:(*):—

शक्तियों की जागृति।

क्या अंग्रेजों के बारह बारह चौदह चौदह वर्ष के लड़के, जो आज भारत की रक्षा के लिये आए हैं, हमारे लड़कों से अधिक योग्य हैं ? उनमें ऐसा कौनसा गुण है जिसके कारण वे हमारे लड़कों से अधिक योग्य समझे जाते हैं ? इसका उत्तर स्पष्ट है। वे उस देश में पले हैं जहाँ के नेता अपने बच्चों को उत्साहित करने के लिये प्रत्येक सम्भव साधन का प्रयोग करते हैं, जहाँ बच्चों को वीर बनाने का पूरा मौका दिया जाता है, जहाँ बच्चों में दूसरों पर शासन करने का विश्वास भरा जाता है।

इसके विपरीत हमारे यहाँ क्या है ? यहाँ के नेता हमेशा ही अपने देशवासियों की अयोग्यता व बेढंगा राग अलापते रहते हैं। जिसको देखो वही खुशामद के 'पैगम्बर' की पूजा करता है। कोई अपनी किसमत को कोसता है, दूसरा 'कलियुग' को दोष देता है। बहुत से ऐसे हैं जो नवयुवकों के उठते हुए उत्साह को दबाने के लिए घृणित उपायों का अवलम्बन करते हैं। जो मिलता है वह आशा भङ्ग ही करता है, जो उठता है वह ठण्डा पानी ही डालने में अपनी बहादुरी समझता है।

हम ऐसे लोगों में रहने वाले नवयुवकों की शक्तियाँ क्या कभी जागृत हो सकती हैं ? कभी नहीं। लड़का जैसी सङ्गत में रहता है वैसा ही वह हो जाता है। हम लोगों को अपने ऊपर विश्वास नहीं है, हम लोगों को अपनी जाति के उच्च

मिशन पर श्रद्धा नहीं है। ऐसी अवस्था में हमारे पीछे चलने वाले 'सिंह' कैसे बन सकते हैं।

रूस के यहूदी लोग जिस समय अमरीका में चले जाते हैं तो थोड़े ही वर्षों में उनकी काया पलट जाती है। रूस में उनके चित्त सङ्कुचित हो गए थे; उनकी कमरें झुक गई थीं। अमरीका में आते ही उनको नए समाज, नए लोक के दर्शन होते हैं। वे अपने आप को सब के बराबर पाते हैं। अमरीका की सामाजिक दशा में उनकी दबी हुई शक्तियाँ जागृत हो उठती हैं और वे नया जीवन धारण करते हैं। उनका मनुष्यत्व विकसित होने लगता है।

इसलिये शक्तियों को जागृत करने के लिये यह आवश्यक है कि अपने इर्द गिर्द वैसे हालात पैदा किये जाँय। शेर का बच्चा यदि गीदड़ों में पाला जाय तो वह उन जैसी आदतें सीख जायगा। हमारे समाचार पत्रों में कभी कभी उन लड़कों के पकड़े जाने की ख़बरें छपा करती हैं जिनको भेड़िये अपनी मान्दों में उठा ले गए थे। भेड़ियों की मान्दों में पड़ने से उन बालकों में सब आदतें उस पशुओं जैसी हो जाती हैं। भला उस जाति के बच्चे वीर कैसे हो सकते हैं जिसके बच्चे स्कूलों में अपनी हारही हार के इतिहास पढ़ते हैं, जहाँ माता पिता बच्चों को 'हाँ हजूर' 'हाँ हजूर' करने की शिक्षा देते हैं। भारतवर्ष के बच्चों को अपनी शक्तियों के जगाने का अवसर नहीं दिया जाता।

यदि अपनी सन्तान को वीर, धर्मात्मा बनाना चाहते हो तो उसके इर्द गिर्द वैसे हालात पैदा करो। उनको निराशा के 'मरसिए' मत सुनाओ। उनके सामने उच्च आदर्श रक्खो। उनको सदा उत्साह से भरो। उनको महापुरुषों के जीवन

चरित्र सुनाओ। उनको वीर जातियों के इतिहास पढ़ाओ। उनको डराने वाली बातें सुना सुनाकर कायर मत बनाओ। कैसा ही दृढ़ प्रतिज्ञ पुरुष क्यों न हो यदि उसके इर्द गिर्द 'बरबादी! बरबादी!' चिल्लाने वाले उल्लू रहेंगे तो वह बेचारा भी बरबाद हो जायगा। ऐसे उल्लुओं के 'हूट! हूट!!' को मत सुनो। उच्च लक्ष्य बना कर आगे बढ़ने के सामान करो। लाखों आत्मायें निराशा के मुंह में इस लिये चली गईं, क्योंकि उनको कोई उत्साहित करने वाला नहीं मिला। किसी ने उनकी शक्तियों के जगाने में सहायता नहीं दी।

इसलिए सदा उन आत्माओं का सङ्ग करो जिनके आदर्श उच्च हैं, जिनका मन उत्साह से भरा हुआ है। उनमें आकर्षण शक्ति है, उनमें मिकनातीसी ताकत है। उनके पास बैठने से आपकी शक्तियों का विकास होगा। अपनी छिपी हुई शक्तियों को जाग्रत करने के लिए बाहर के साधनों की बड़ी भारी आवश्यकता है। अपने समाज, अपने देश को उन साधनों से सम्पन्न करो। इस कमी के कारण हम उठ नहीं सकते हैं। यह हमारी उन्नति के मार्ग में भारी बाधा डाल रही है।

सत्यदेव।

-:)*(:-

हमारी कठिनाइयाँ उतनी ही बढ़ती जाती हैं जितना कि हम अपने उद्देश्य के पास पहुंचते जाते हैं।

—Goethe.

—:*:—

शान्ति और सुख।

जगन्नियन्ता जगदाधार जगदीश्वरके निर्माण किये हुए जगत् की प्रायः सभी सामग्रियों में सुख तथा शान्ति की उत्सुकता सर्वदा पायी जाती है। सृष्टि मात्र के सभी पदार्थ इसके लिये लालायित रहते हैं। पदार्थ की यह उत्सुकता उनकी आन्तरिक कामना उनके व्यवहार तथा रहन सहन से अवगत होती है। सूक्ष्म दृष्टि से मनुष्य के आन्तरिक प्राय. ससार के सभी पदार्थ तीन भागों में विभक्त हैं। इन त्रिभागों के नाम हैं कठिन, तरल, वायव्य। ऐसी अवस्था में अब यहाँ यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि तीनों पदार्थों के कठिन पदार्थों में जो नाना प्रकार के स्थूल पदार्थ हैं, अप्राणी की श्रेणी में हैं, उनमें कैसे सुख और शान्ति की इच्छाशक्ति की विद्यमानता पायी जायगी। इसका उत्तर इस प्रकार से है।

आप सड़कों तथा गलियों के अणु परमाणु को अप्राणी की श्रेणी में गिनते करेंगे। यदि उनको निरीक्षण करके देखें तो अवश्य उनमें आप इच्छाशक्ति की विद्यमानता पायेंगे। किशोरावस्थाके हिन्दी भाषा में तो इस प्रकार की मीमांसा की कम पुस्तकें आपको दृष्टिगत होंगी, किन्तु प्रौढ़ अंगरेज़ी भाषा में इस विषय की सहस्रों पुस्तकें बड़े २ अनुभवी विद्वानों और प्रसिद्ध पुरुषों द्वारा लिखी हुई मिलेंगी। जिनमें आप देखेंगे कि अंगरेजी भाषा भाषी लोगों ने कितनी सावधानी कितने परिश्रम कितने अध्यवसाय द्वारा अपने इस कार्य्य में किस चमत्कारी से कैसी सफलता प्राप्त करली है। ऊपर जो अणु परमाणु में सुख और शान्ति की इच्छा शक्ति की विद्य-

मानता के बारे में जिक्र आया है, उसके बारे में यह वक्तव्य है कि यह अणु परमाणु जब सड़कों या गलियों में सहस्रों मनुष्यों द्वारा रौंदे जाते हैं तब इनकी दशा कैसी घृणोत्पादक रहती है और जब यही अणु परमाणु को आप संग्रह करके चलनी अथवा अन्य किसी यन्त्र द्वारा साफ़ कर देते हैं तब इनकी शोभा कैसी बढ़ जाती है और कैसे सुहावने नजर आने लगते हैं। इससे स्पष्ट है कि ईश्वर कृत प्रायः सभी सृष्टि के पदार्थ शान्ति के इच्छुक हैं। ईश्वर ने न्यायदृष्टि से अपने निर्माण किये हुए भिन्न २ पदार्थों में भिन्न २ प्रकार से भोग उपभोग की शक्ति प्रदान की है। न्यायकर्त्ता ईश्वर ने जगत् मात्र के पदार्थों को सुख और शान्ति का इच्छुक बनाया है और उसकी प्राप्ति का नियम भी उसने निश्चित कर दिया है।

जिस प्रकार से जड़ पदार्थों में इच्छा शक्ति की विद्यमानता प्रमाणित होती है और सिद्ध प्राप्ति के यत्न में सभी पदार्थ लिप्त रहते हैं, प्राकृतिक नियमवश एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ का मेल होकर रूप में विचित्रता आती जाती है तब चेतन मनुष्य मात्र में भी सुख और शान्ति की प्राप्ति की उत्सुकता में किसको कब सन्देह प्रतीत हो सकता है। वास्तव में बात भी यही है कि प्रत्येक मनुष्य सुख तथा शान्ति की खोज में भिन्न २ प्रणाली से रत रहता है। अतएव मनुष्य के लिये शान्ति की आवश्यकता है। शान्ति क्या है उसकी प्राप्ति के कौन साधन हैं, उसकी प्राप्ति से क्या २ लाभ है उस पर विचार करना प्रत्येक मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है।

ईश्वरीय सृष्टिरचना में मनुष्य की रचना सर्व्वोपरि है। एतदर्थ मनुष्य के लिये सुख और शान्ति की अधिक आवश्यकता है। इसका कारण यह है कि सभी चैतन्य पदार्थों में

मनुष्य को सुख दुःख का अधिक ज्ञान रहता है। और ऐसी स्थिति में जब कि ईश्वर कृत पदार्थों में मनुष्य ही सबसे अधिक उन्नति के शिखर पर विराजमान है तब मनुष्य को अपने वास्तविक सुख और शान्ति की आवश्यकता पर अवश्य ध्यान देना सुगम और आवश्यक है। इसलिये मनुष्य मात्र के लिये यह कर्तव्य अनिवार्य्य होना चाहिये कि वह अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिये तत्त्व की खोज और उसकी प्राप्ति में भी लिप्त रहे। क्योंकि विकाशवादी पुरुषों ने अनुसन्धान द्वारा पता लगाया है कि किस प्रकार से यह मनुष्य का शरीर क्रमशः, धीरे धीरे उन्नति करता हुआ इस दशा को प्राप्त हुआ है। मानुषिक उत्पत्ति के हेतु पर विचार करके यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि ईश्वर ने मनुष्यशरीर की रचना ही इस उद्देश्य से की है कि वह अपने स्वकार्यों द्वारा स्वयम् शान्ति का एक अङ्ग बन जाय। सृष्टि के सभी पदार्थ प्राणी व अप्राणी मात्र में मनुष्य सा कार्य्य करने की स्वतन्त्रता ईश्वर ने किसी को नहीं दी है। परमात्मा मनुष्य को सुख और शान्ति की खोजने की शक्ति, उसको पाने तथा उससे आनन्द अनुभव करने के प्रायः सभी यन्त्र मनुष्य में भर दिये हैं। ऐसी स्वतं-त्रता पाकर भी जो मनुष्य शान्ति की प्राप्ति का यत्न नहीं करता है उसको समझना चाहिये कि ईश्वर की आज्ञा का वह उल्लंघन करता है। मनुष्य के लिये इससे बढ़ कर और क्या दुर्भाग्य की बात हो सकती है कि वह क्षणिक ही स्वतंत्रता पाकर अपने इस बहुमूल्य अवसर को व्यर्थ में नष्ट करता है और चिरस्थायी सात्विक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के यत्न में तल्लीन नहीं होता। इतिहास में जितने सुख्यात महा-पुरुषों के नाम पाये जाते हैं यदि विचार की दृष्टि से देखा

जाय तो उन सब पुरुषों ने भी इसी शान्ति और सुख की खोज और उनमें सफलीभूत होने में नाम पाया है।

चित्त से व्यग्रता, चंचलता, उत्सुकता, सन्दिग्धता, आदि को दूरकर धीरता, गंभीरता, सन्तोषिता, तथा स्थिरता का वास करना ही शान्ति का लक्षण कहा जा सकता है। वास्तविक शान्ति वही है जिसमें मन को सन्तुष्टि हो। मन में उद्विग्नता लेश मात्र न पाई जाय, चित्त अभाव शून्य रहे। हृदय में किसी बात की खटका आना, सुख और शान्ति का शत्रु समझना चाहिये। मन का इच्छारहित हो जाना, इसमें सन्तोष का अटल राज्य विराजना, किस क्रिया के सम्पादन से हो सकता है, इसके विषय में लोगों की भिन्न २ राय है।

शान्ति प्राप्ति के विषय में पश्चिमीय सभ्यों की सम्मति से वर्त्तमान जीवन में सब प्रकार की भोग उपभोग की सामग्रियों की विद्यमानता में ही चित्त को शान्ति मिलना अधिकतर पाया जाता है। बहुतों की सम्मति में पश्चिमीय खंड में इन दिनों इतने जो सांसारिक अभ्युदय नजर आते हैं उनका कारण यही है कि अभी तक उन लोगों ने शान्ति का असली सार यहीं तक समझा है कि जीवन में नाना प्रकार के सुख विलास करें, यही शान्ति है। इसी कारण से वे तन मन से सर्व्वदा उसी वस्तु की प्रीति में लीन रहते हैं जिससे ये सब वस्तु उपलब्ध हों। किन्तु पूर्व्वीय सभ्यों की दृष्टि में वर्त्तमान जीवन में सुख और शान्ति की प्राप्ति के साथ साथ जीवन के बाद भी आत्मा शान्तिमय रहे वही शान्ति समझी जाती है। अतएव जिस क्रिया के सम्पादन से इस जीवन में तो सुख शान्ति मिलेही, आगे इस जीवन के बाद भी चित्त को शान्ति मिले वही भोग उत्तम और उपादेय है। ऐसी ही धारणा

करके यहाँ इसकी उपलब्धि में इसी तरह के नाना प्रकार की क्रियाएँ इसके लिये बतायी गयी हैं। जिस एक व्यक्ति की क्रिया से समस्त भूमण्डल के मनुष्यों को क्या प्राणी अप्राणी मात्र भूत पदार्थों को सुख मिले वही शान्ति वास्तविक शान्ति कही जा सकती है।

प्रकृति का भी ऐसा ही नियम है वह भी अपने स्वकर्मों द्वारा मनुष्यमात्र को यही शिक्षा देती है कि भू-पदार्थ मात्र की शान्ति से अपनी शान्ति समझो। वृक्ष, जल, वायु किस प्रकार से अहित हित को शान्ति प्रदान कर रहे हैं? वे अविश्रान्त भाव से कैसी उदारता, सहृदयता पूर्व्वक सर्वदा शान्ति में रत हैं, इनकी तनिक भी भूपदार्थों के साथ सहानुभूति हटे तो न जाने क्या २ दृश्य उपस्थित हो जायँ। सृष्टि का अस्तित्व तक रहने में सन्देह हो जाय। इसी प्रकार से मनुष्य को भी परोपकारिता से विमुख नहीं होना चाहिये। इसके लिये दया की अत्यन्त आवश्यकता है। प्रातःस्मरणीय बुद्ध देव जैसे आत्मसंयमी बनना, वाह्य आडम्बर को तुच्छ समझते हुए भी पीछे नहीं हटने का नाम लेना चाहिये। माहात्मा बुद्ध देव की वह भेड़िये के दो बच्चों पर की असीम दया की कीर्त्ति, चन्द्र सूर्य्य की विद्यमानता तक नहीं मिट सकती है। अपने हृदय में दया की मात्रा दिनोदिन क्रमशः उत्तरोत्तर बढ़ाते रहने में यत्नशील रहना सुख और शान्ति की प्राप्ति का सुगम तथा आवश्यक उपाय है। सस्नेह सृष्टि मात्र के पदार्थों से दया का व्यवहार करते हुए एकता के सूत्र में बन्धना तथा दूसरों को बान्धना परम आवश्यक है।

प्रकृति के दो पदार्थों के संयोग से जैसे एक नवीन रूप का दृश्य उपस्थित होता है उसी प्रकार से आत्मा के साथ

दया, उत्साह, उपकार, धैर्य्य, क्षमा, विवेक, बुद्धि, कार्य्यदक्षता आदि उपाङ्गों की संयोगिता से मनुष्य में भी एक शक्ति का सञ्चार होता है जो मनुष्य को बड़ा सामर्थ्यवान और अर्थ-सम्पन्न सुयोग्य बलिष्ठ पुरुष बना देता है। संसार में इन सर्व्वशक्तियों के होते प्रत्येक मनुष्य का यह आवश्यक कर्तव्य होना चाहिये कि वह पात्र कुपात्र पर ध्यान न देते हुए शक्ति सामञ्जस्य द्वारा प्रायः सृष्टि मात्र के पदार्थों के साथ सहानुभूति सूचक अपनी शक्तियों का प्रयोग करे। परन्तु इस बात का अवश्य ध्यान रखे कि इस दया का कोई अनुचित लाभ न उठा सके। यही मनुष्य के जीवन का उद्देश्य है, जो यहाँ पर ऐसे ही पथ पर चलने से सार्थक होता है। ऐसे ही क्षमताशील सदुद्योगी का जीवन सार्थक और अनुकरणीय कहा जा सकता है।

उपरोक्त कार्यप्रणाली के लिये मनुष्य में उल्लिखित गुणों का सन्निहित रहना आवश्यक है। मनुष्य में वे गुण कैसे आ सकते हैं, उन गुणों की क्या तारीफ़ है, कौन गुण से किस गुण को क्या सम्बन्ध है। इसकी चर्चा में एक बड़ी मोटी पुस्तक तयार हो सकती है, यहाँ केवल सुख और शन्ति की भूमिका का दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। अतएव, संक्षिप्त में उसका सारांश यह है कि जिस मनुष्य में दया नहीं होगी, जिसमें उत्साह नहीं पाया जायगा जो, परोपकारी नहीं बन सकता है, जिसमें विचाराभाव रहेगा, जिसमें सहानुभूति नहीं रहेगी, जो परिश्रमी नहीं होगा, जो क्रियाशील नहीं रहेगा, जिसमें धीरता नहीं होगी, जो विश्वासी न होगा, जो कर्म्मनिष्ठ न रहेगा, जो धार्म्मिक नहीं होगा, जो शास्त्रानुशीलन नहीं करता रहेगा, जो विनयी नहीं होगा, जो दीनता

मय मधुर भाषी नहीं होगा, जो अपने को तुच्छाति तुच्छ समझता हुआ संसार मात्र को अपना नहीं समझेगा, जो नि-स्वार्थी न होगा, उसको कभी शान्ति और सुख नहीं प्राप्त हो सकता है। उसको शान्ति और सुख की आशा करना दुराशा मात्र है।

ईर्षा तथा द्वेष को अपने पास नहीं फटकने देना चाहिये, अहंकार के कार्य्यों को सर्वदा घृणा की दृष्टि से देखना चाहिये, असत्यता से डरकर रहना चाहिये। किसी कार्य्य को अपूर्णता से हताश हो सन्देहात्मक नहीं होते हुए ईश्वर पर भरोसा करना, ईश्वर को शान्ति की प्राप्ति में सहायक बनाना है। कार्य्य में हाथ डालने के पूर्व ही कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार कर लेना शोक और संताप को दूर भगाते हुए सुख और शान्ति को अपने हृदय में डेरा दिलाना है। सत्य-शीलता से सूई के अग्रभाग भर भी पीछे नहीं हटना, सुख और शान्ति रूपी पौधे को हृदय में अंकुरित करना है। विनया-नुनय वाणी के बाण से जगत् मात्र पर कब्ज़ा करने का यत्न करना सुख और शान्ति रूपी अपने हृदय में उगे हुए पौधे का फूलना तथा फलना है।

—:*:—

सम्पूर्ण।

—:*:—

हिन्दी-गल्पमाला।

—:*:—

सामाजिक शिक्षाप्रद, देशहित और हास्यरस गल्पों से पूर्ण, मासिक पत्र।

वार्षिक मूल्य २॥)

— * —

प्रवर्त्तिका—

श्रीकौशिल्यादेवी, काशी।